शुक्लपक्ष आपते हो नित्य रुद्रसरोवरको वार्षिकी यात्रा करनेसे मनुष्य कभी विघ्न-पीड़ित नहीं होते। इस अश्वमेधका यागकर उसके उपरान्त स्नान करनेसे जो जो पुण्यसञ्चय होता है, इस दशाश्वमेधमें दशहराके दिन स्नान करनेसे मनुष्य उस पुण्यसे परितुष्ट होते हैं। गङ्गाके पश्चिम-तटमें भगवान् दशहरेश्वर विराजित हैं, इनको नमस्कार करनेसे जीवकी दुर्दशा दूर होती है। काशीके जिस स्थानको अन्त-र्गृहका दक्षिण द्वार कहते हैं, वहां विरा-जित ब्रह्मेश्वरके दर्शनसे भी ब्रह्मलोक मिलता है। इसतरह महामति ब्रह्मा काशीमें विश्वनाथकी आगमनप्रतीक्षामें वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें अवस्थान करने लगे। राजा दिवोदासने भी ब्राह्मणरूपी ब्रह्माका यज्ञ समाधा होनेपर उनके वासार्थ एक ब्रह्मशाला प्रस्तुत करा दी। ब्रह्मा भी वेदनादसे नभस्तल उद्घोषितकर वास करने लगे। हे मुनिवर! मुझसे यह महापातकनाशन दशाश्वमेध तीर्थका सुन्दर महात्म्य तुमने सुना। जो मानव श्रद्धापूत हो यह अध्याय सुनते या सुनाते, वह ब्रह्म-लोकमें जाते हैं।

द्विपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाश अध्याय।

वाराणसी-वर्णन और गणप्रेषण।

अगस्त्यने कहा, हे तत्त्वज्ञानिश्रेष्ठ! आपके मुखसे अश्रुतपूर्व्व ब्रह्मोपाख्यान सुन-कर अति सन्तोष पाया; किन्तु ब्रह्माके काशीमें अवस्थान करनेपर महादेवने क्या किया, वह कहिये। कार्त्तिकेयने कहा, हे मुनिवर! सुनो! ब्रह्माका विलम्ब देखकर महादेव उद्वेगसे चिन्ता करने लगे, कि काशीपुरी जैसी साधारणकी चित्तविमो-हिनी कोई भूमि ही नहीं है। जो व्यक्ति वहां जाते हैं, वह फिर लौटना ही नहीं चाहते। पहले योगिनीगण काशीमें जाकर फिर न आईं, फिर सहस्रकर सूर्य्य वहां जाकर भी कुछ न कर सके, इसके उपरान्त ब्रह्मा सब विधानमें समर्थ होकर भी काशीमें मेरे कार्य्यका कोई विधान कर न सके। इसतरह चिन्ता करते हुए महादेवने अपने अनुचर प्रमथगणको बुला-कर आदेश दिया, "तुमलोग शीघ्र काशी-धाममें उपस्थित हो; वहां मेरी भेजी हुई योगिनीगण, सूर्य्य और ब्रह्मा ही क्या करते हैं, इसका अनुसन्धान लगाओ।" इस तरह आदेशकर महादेवने प्रमथगणका नाम उच्चारण करते हुए कहा, हे शङ्कु-कर्ण! हे महाकाल! हे घण्टाकर्ण! हे महोदर! हे सोम! हे नन्दिन्! हे नन्दि-षेण! हे काल! हे पिङ्गल! हे कुक्कुट! हे कुण्डोदर! हे मयूराक्ष! हे बाण! हे

गोकर्ण! हे तारक! हे तिलवर्ण! हे स्थूलकर्ण! हे द्रुमिचण्ड! हे प्रभामय! हे सुकेश! हे विरूते! हे छाग! हे कपर्दिन्! हे पिङ्गलाच! हे वीरभद्र! हे किरात! हे चतुर्म्मुख! हे निकुम्भ! हे पञ्चाच! हे भारभूत! हे त्र्यच! हे चेमक! हे लाङ्गलिन! हे सुमुख! हे विराध! हे आषाढ़! कार्त्तिक और गणपतिपर मेरी जितनी ममता है, वैसा ही अपत्यस्नेह तुम लोगोंके प्रति भी है। मैं नगमेय, शाख, विशाख, नन्दी और भृङ्गीको जैसा चाहता हूं, तुम लोग भी अपनेको मेरा वैसा ही प्रीतिका पात्र जानना। बड़ी लज्जाका विषय है, कि तुम लोगोंके रहते मैं काशीका, दिवोदास राजाका, योगिनीगणका, दिवाकरका और ब्रह्माका कोई समाचार पा नहीं सका। जो हो, तुम लोगोंमें कालसे भी भयङ्कर शङ्कुकर्ण और महाकाल दोनो काशीमें जा वहांके समाचारसे ज्ञात हो शीघ्र आगमन करो। शिवादेश शिरोधार्य्यकर शङ्कुकर्ण और महाकाल दोनो काशी आये। जैसे ऐन्द्रजालिक माया, बुद्धिमान्को भी मोहित करती है, वैसे ही वह दोनो भी काशीदर्शन मात्रसे सूर्य्यादिकी तरह मोहित हुए। मोहकी मोहिनीशक्ति और भाग्यका वैपरीत्य बड़ा ही अद्भुत है! देखो मूढ़गण मोक्षभूमि काशीको पाकर भी परिहार करते हैं, जो सर्व्व-सुखाधार काशीमें जाकर भी अन्यत्र जाते हैं, वह मुक्तिको करतलमें पाकर भी दूर निक्षेप करते हैं। जहां उष्ण जलसे स्नानको साधुगण अवभृथस्नानके समान कहते हैं, जहां शिवलिङ्गपर एक पुष्प प्रदान करनेसे दश हेमपुष्पदानका फल मिलता है और जहां शिवलिङ्गके पास साष्टाङ्ग प्रणाम करनेसे इन्द्रत्वकी अपेक्षा भी श्रेष्ठफल मिलता है; उस काशीको कोई चेतन व्यक्ति परित्याग नहीं करते। जहां एक ब्राह्मणको यथाभिलषित भोजन करानेसे, वाजपेय यज्ञका फल होता है; जहां ब्राह्मणको यथाविधि एक गो-दानके परिणामसे अयुत गोदानका पुण्य होता है और जहां एक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनेसे ब्रह्माण्डप्रतिष्ठाका पुण्यसञ्चय होता है; कोई मतिमान् व्यक्ति उस प्राणप्रिया काशीको परित्याग करनेकी इच्छा नहीं करते। वह दोनो ऐसा विचारकर प्रत्येकने एक एक शिवलिङ्ग स्थापनकर काशीमें ही अवस्थान किया; आजतक वह उस जगहसे नहीं गये। विश्वेश्वरके नैऋत कोणमें शङ्कुकर्ण स्थापित शङ्कुकर्णेश्वर नामक शिवलिङ्गका दर्शन करनेसे जीव फिर जठर-यातना नहीं भोगते और महाकालस्थापित महाकालेश्वर नामक लिङ्गकी पूजा स्तव और नमस्कारादि करनेसे कालभय नहीं रहता। कार्त्तिकेयने कहा, इधर उनके काशीसे लौटनेमें विलम्ब देख सर्व्वज्ञ

आदिदेवने उसका कारण समझ फिर दूसरे दो गणको काशीमें जानेका आदेश किया। हे मतिमन्! घण्टाकर्ण और महोदर! तुमलोग काशीमें जा वहांके सब वृत्तान्तसे अवगत हो फिर मेरे पास उपस्थित हो। इसतरह शिवके आदेशसे वह दोनो काशीमें जा वहां ही अवस्थित हो आजतक कहीं नहीं गये। गणाधिप घण्टाकर्णने वहां रहकर घण्टाकर्णेश्वर नामक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठाकर और उनके स्नानार्थ एक कुण्ड निर्म्माण किया। उनके पूर्व्व महोदर भी महोदरेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापनकर सदा शिवाराधनापर हो आजतक विराज रहे हैं। हे मुने! काशीमें महोदरेश्वर लिङ्गके दर्शनसे मानव फिर कभी जननी जठरमें प्रवेश नहीं करते। घण्टाकर्ण-कुण्डमें स्नानकर विश्वेश्वरका दर्शन करनेसे यत्रतत्रमृत मानवको काशीमृत्युका फल होता है। इस तीर्थमें यथाविधि श्राद्धकारी अपने पूर्व्वपुरुषगणका उद्धार करते हैं। आजतक इस कुण्डमें क्षणकाल निमग्न हो शिवका ध्यान करनेसे, भगवान्‌की पूजाका घण्टाध्वनिनाद सुनाई देता है। पितृगण सदा ही अपने अधस्तन पुरुषके हाथसे इस तीर्थमें तिलोदककी प्रार्थना करते हैं। हे मुने! कितने ही लोगोंने इस तीर्थमें पितृपुरुषोंका तर्पण किया है, इसलिये उनके वंशजात व्यक्तिने काशीके इस स्थानमें पितृपुरुषोंका उदककार्य्यकर अपना अभिलाष पूर्ण किया है। कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने! महादेव घण्टाकर्ण और महोदरका भी विलम्ब देखकर अति विस्मयके साथ बारबार शिरश्चालनाकर मृदुहास्यपूर्व्वक चिन्ता करने लगी, हे काशि! तुमको मैं महामोहन विद्या ही समझता हूं। प्राचीनगण तुम्हें महामोहहारिणी कहकर निर्द्देश करते हैं, किन्तु तुम जो महामोहकारिणी हो; उन्हें यह विदित नहीं। मैं जिसे तुम्हारे यहां भेजता हूं, वह सभी तुम्हारी मायासे मोहित होते हैं। यह जानकर भी क्रमशः मैं सबको भेजूंगा। हे काशि! विधिके प्रतिकूल रहनेपर भी नियत अध्यवसायके बलसे अनुकूलता करनेको वजह विचक्षण व्यक्ति कभी उद्यमको नहीं त्यागते। उसका दृष्टान्त, गमनोद्यत चन्द्र और सूर्य्य बार बार राहु द्वारा ग्रस्त होकर भी गमनमें अवहेला नहीं करते। विधिप्रतिकूल होनेपर भी एक और नियत कार्य्य व्याहत करनेपर भी, अत्यन्त अध्यवसायीके पक्षमें स्वयं ही अनुकूल होते हैं। पूर्व्वार्ज्जित कार्य्यको ही दैव कहते हैं। विचक्षण व्यक्तिको उस दैवको खण्ड करनेके लिये विशेष यत्न करना उचित है। पात्रस्थ भोज्य, भोक्ताके हाथकी और मुखकी क्रियाके बिना दैवकी साहाय्यसे स्वयं मुखमें कभी प्रवेश कर नहीं सकता। महादेवने इसतरह उद्यमको ही दैवजेता निश्चयकर सोमनन्दी, नन्दि-

प्रिया, कौल, पिङ्गल और कुक्कुट इनसे पञ्च-प्रमथको काशीमें भेजा। जैसे काशीमृत जीव फिर संसारमें नहीं आते, उसी तरह उन पांचने भी काशीसे न लौटकर महादेवके सन्तोषार्थ अपने अपने नामसे शिवलिङ्ग स्थापनकर मोक्षधाम काशीमें ही अवस्थान किया। भक्त मानव, आनन्दवनमें सोमनन्दीश्वरके दर्शनसे सोमलोकमें परमानन्द भोग करते हैं। उनके उत्तर नन्दिषेणेश्वरके दर्शनसे जीव आनन्दसेना और मृत्यु जय पाते हैं। गङ्गाके पश्चिमोत्तर भागमें स्थापित कालेश्वर नामक शिवलिङ्गके निकट प्रणत होनेसे कालभय दूर होता है। इनके उत्तर प्रतिष्ठित पिङ्गलेश्वरकी पूजा करनेसे मानवकी शिवके साथ तन्मयता होती है। इसीतरह कुक्कुटाण्डाकृति कुक्कुटेश्वरके प्रति भक्ति करनेसे फिर कभी गर्भयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। कार्त्तिकेयने कहा, हे मुनिवर महादेव काशीसे सोमनन्दी प्रभृति पञ्चप्रमथको भी कोई बात न पाकर कहने लगे, विशेष विवेचनासे दिखाई देता है, कि इसीसे मेरा कार्य्य सिद्ध हो रहा है, मेरे सब परिजनलोग वहां जायें, कारण मायावी और वीर्य्यशाली प्रमथगणके वहां जानेसे, निःसन्देह मुझे ही गमन करना पड़ेगा। जो लोग मेरे आत्मीय हैं, उन सबको ही क्रमशः भेजूंगा, सबके शेषमें मैं भी जाऊंगा। ऐसा निश्चयकर आदिदेवने कुम्भोदर, मयूर, बाण और गोकर्ण, इन चार गणको वहां भेजा। वह लोग मायाके साहाय्यसे शीघ्र काशीमें आ नाना उपायसे राजा दिवोदासको धर्मच्युत करनेकी चेष्टा करने लगे। फिर उनसे अपार हो काशीमें ही रहे और प्रभुका सन्तोष, भृत्यका सहस्र अपराधभञ्जक विचारकर शिवलिङ्गकी आराधना करने लगे। और भी विचार किया, कि काशीमें यथाविधि शिवलिङ्गकी उपासनाकर प्रभुके निकट सहस्र अपराधसे मुक्ति पावेंगे। यथाशास्त्र शिवलिङ्गकी एकबार पूजा करनेसे शिवको जैसा सन्तोष होता है, बहुत दान, यज्ञ, तपस्या, व्रतादि करनेपर भी वह वैसे सन्तुष्ट नहीं होते। जो लिङ्गार्चनविधानसे अवगत हो लिङ्गार्चनामें ही सदा अवस्थान करते हैं, उनके मात्र दो नयन होनेपर भी वह साक्षात् त्रिनयन होते हैं। शत शत गोदान या सुवर्णदानसे जो फल होता है, एकमात्र शिवलिङ्गकी अर्चनासे भी वही फल मिलता है। अश्वमेधादि यज्ञका भी वैसा फल नहीं है, जैसा शिवलिङ्गकी पूजासे मिलता है। यथाविधानसे स्थापित शिवलिङ्गका स्नानीय जल जिनके उदरमें तीनबार प्रवेश करता, उनका त्रिविध पाप विनष्ट होता है। लिङ्गस्नपनजलसे जिनका मस्तक अभिषिक्त होता है, उन निष्पाप मानवको गङ्गास्नानका प्रयोजन

नहीं। ऐसा सन्देह होता है, कि अर्च्चित शिवलिङ्गका दर्शनकर जो व्यक्ति प्रणत होते हैं, वह इस जगतमें फिर आवेंगे या नहीं। भक्तिके साथ शिवलिङ्गस्थापक मानव सप्तजन्मार्ज्जित पापसे विमुक्त हो स्वर्गमें जाते हैं। मन ही मन ऐसा विचारकर प्रमथगणने शिवकी क्रोधशान्तिके लिये अपने अपने नामसे सर्व्वपातकनाशन लिङ्गस्थापन किया। लोलार्कके पास कुक्कोदरेश्वर नामक शिवलिङ्ग विराजित हैं, उनके दर्शनसे जीवको निश्चय ही शिवलोक जाना होता है। उनके पश्चिम असिके पास अवस्थित मयूरेश्वरकी पूजा करनेसे फिर जठरयातना भोगना नहीं पड़ती। उनके पश्चिम प्रतिष्ठित वाणेश्वरलिङ्गके दर्शनमात्रसे ही सब पाप दूर होते हैं। अन्तर्गृहके पश्चिम द्वारमें गोकर्णेश्वर विराज रहे हैं। काशीमें इन महालिङ्गकी पूजासे सब विघ्न दूरीभूत होते हैं। इन गोकर्णेश्वरके भक्तिमान व्यक्तिको मृत्युकालमें सब जगह ही सम्पूर्ण ज्ञान रहता है। कार्त्तिकेय कहा, गणनायक भगवान्, इन चारके प्रत्यागमनमें भी विलम्ब देख काशीकी अपार महिमा वर्णन करने लगे। महादेवने कहा, जो इस चराचर विश्वको भ्रमण कराते हैं, काशी ही वह शरीरिणी विष्णुमाया है। लोग स्त्री, पुत्र, गृह, क्षेत्र, धनादि परित्यागकर मरण पर्य्यन्त जिस काशीकी उपासना करते हैं और जहां मरनेसे भी लोग भीत नहीं होते, उस काशीमें अवस्थित प्रमथगण काशीमें अवहेलन करके भी किसलिये भीत होंगे? जहां मृत्यु ही मङ्गल, भस्म ही देहका भूषण, कौपीन ही वसन है; जहां श्रीमती मोक्षलक्ष्मी-भृत, दरिद्र, धनी, ब्राह्मण या चाण्डालको भी समान प्रेमसे आलिङ्गन करती हैं; इस जगत्में उस काशीके समान कोई नहीं है। इन्द्रादिदेवगण भी जिस काशीभृत अतएव मुक्त जीवके कोटि अंशके एकांशके भी उपयुक्त नहीं हैं; जिस काशीमें मरनेसे जीवगणको, ब्रह्मादि देवगण भी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं; उस काशीमें शव भी पवित्र होनेकी वजह मैं स्वयं उसका कान स्पर्श करता हूं। जिनके कण्ठसे तीनबार काशीनाम उच्चारित हो, उनकी अपेक्षा इस जगत्में और कोई पवित्र पदार्थ नहीं है। जो काशीका ध्यान करते या सेवा करते हैं, वह मेरा ही ध्यान और मेरी ही सेवा करते हैं। जिनका चित्त सदा काशीसेवामें अनुरक्त है, उन्हें मैं सयत्न हृदयमें रखता हूं। जो स्वयं काशीवासमें अपारक हो दूसरे व्यक्तिको अर्थसाहाय्यकर वास कराते हैं; उन्हें भी मैं काशीवासका फल देता हूं। जो धैर्य्यावलम्बनकर मृत्युकाल पर्य्यन्त काशीमें वास करते हैं, लोग उन्हें जीवन्मुक्त कहकर उनकी पूजा और वन्दना

करते हैं। महादेवने इसतरह काशी-गुणावलि वर्णन करके अवशिष्ट प्रमथगणको बुलाकर सादर काशीमें भेजा। महादेवने कहा, हे पवित्रहृदय तारक! जहां दिवोदास राज्यपालन करते हैं, तुम उस काशीधाममें जाओ। हे तिलपर्ण! हे स्थूलकर्ण! हे हेमिचण्ड! हे प्रभामय! हे सुकेश! हे विन्दते! हे छाग! हे कपर्हिन्! हे पिङ्गलाक्ष! हे वीरभद्र! हे किरात! हे चतुर्म्मुख! हे निकुम्भ! हे पञ्चाक्ष! हे भारभूत! हे त्र्यक्ष! हे क्षेमक! हे लाङ्गलिन! हे विराध! हे सुमुख! और हे आषाढ़! तुम सभी काशीमें जाओ। कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने! तब प्रभुभक्त महात्मा कार्य्यज्ञ दृढ़प्रतिज्ञ प्रमथगण, शिवका आदेश पा अविमुक्तक्षेत्रमें जाकर नानारूप मायाके साहाय्यसे बहुविध रूप धारणकर एकाग्रचित्तसे दिवोदासके छिद्रानुसन्धानमें भ्रमण करने लगे, किन्तु बहुत आयाससे भी उन राजाका कोई छिद्र न पाकर अपना अपना बहुकालसञ्चित यश मलिन हुआ देख "आः! यह क्या हुआ" कहकर अपनी निन्दा करने लगे! गणसमूह कहने लगे, हमलोग इतने दिनसे यहां आये हैं, पर किसीको वशीभूत नहीं कर सके; अबतक जो प्रभुके पास सम्मान पाया था, उसे धिक् है! महादेव हमलोगोंपर बहुसम्मान, बहुदान और बहुत आदरसे दया करते हैं। शेषमें उस दयाका प्रतिफल क्या यही हुआ। इस समय प्रभुकार्य्यमें अवहेला कर शेषमें तमोमय दुरन्तलोकमें वास करना होगा, जो प्रभुका आदेश सुसम्पन्न न करके स्वच्छन्द शरीरसे अवस्थान करते हैं, उनकी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहती। जो भृत्य प्रभुसे सम्मानित हो उनके कर्त्तव्य-कार्य्यमें अनवधान करते हैं, उनका अभिलाष कभी पूर्ण नहीं होता; अथवा प्रभुकार्य्य न करके प्रभुके समीप जो लज्जाहीन भृत्य मुंह दिखाते हैं, उनसे जितना इस धरापर अधिक भार होता है, उतना भार पर्व्वत, सागर या वृहत् वृहत् वृक्षोंके रहनेसे भी नहीं होता। हमलोगोंने पुराणकी बातें सुनी हैं, सुतरां इस काशीको किसी तरह परित्याग न करेंगे। सुनते हैं, जो पापी अथवा धन या आयु जिनकी अल्प है, उन निरुपाय जीवको काशीके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। जो कृत पापकर्म्मके लिये अनुतप्त होते हैं, उनको काशीमें आनेसे ही सब अनुतापानलसे मुक्ति मिलती है और जिन्होंने प्रभुहिंसा की है और कृतघ्न या विश्वासघातक हैं, उनको इस काशीक्षेत्रके सिवा और उपाय नहीं है। प्रमथगण इसतरह पौराणिक बातपर विश्वास कर दिवोदास कर्त्तृक प्रशासित रह काशीमें ही वास करने लगे। वह राजा दिवोदास असामा-

स्वबुद्धिजीवी होकर भी शिवप्रभावसे नाना-रूपमें अवस्थित देवगणसे ज्ञात नहीं हो सके. यह कुछ विचित्र नहीं है ; इसलिये, कि स्वयं चित्रगुप्त जिन काशीवासियोंका अनुसन्धान पा नहीं सकते, तो सामान्य मनुष्यका वह विषय जानना अति दुःसाध्य है और काशीमें जो लिङ्गप्रतिष्ठाकर अवस्थान करते हैं, स्वयं धर्मराज भी उन अशोम-तेजाओंका अन्त नहीं पाते। हे मुनिवर कुम्भयोने ! इसतरह काशीमें रहकर प्रम-थगण शिवलिङ्गकी आराधना करने लगे। उस अवधिसे वह लोग काशीमें ही रहे। हे मुने ! उन लोगोंमें गणाधिप तारक, जीवके ज्ञानप्रद तारकेश्वर नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठितकर उन्होंकी सेवामें आजतक आसक्त हैं। मानवगण तारकेश्वरके भक्त होनेसे सहज ही तारक ज्ञान लाभ करते हैं। तिलपर्ण नामक गणश्रेष्ठने तिलप्रमाण "तिलपर्णेश्वर" नामक शिवप्रतिष्ठा की थी, उनके दर्शनमात्रसे लोग निष्पाप होते हैं। उनके निकट ही स्थूलकर्णेश्वर नामक शिवलिङ्ग हैं, इनको पूजा करनेसे जीवगण सद्गति पाते हैं। उनके पश्चिममें 'इमि-चण्डेश्वर' नामक कान्तिमय शिवलिङ्गको आराधना करनेसे पापभय नहीं रहता। प्रभामयेश्वर नामक शिवलिङ्गका दर्शन करनेसे जीव दूसरी जगह मरनेपर भी प्रभामय विमानपर आरूढ़ हो शिवलोक जाते और हरिकेशवनमें, 'सुकेशेश्वर' नामक शिवलिङ्ग हैं, उनका दर्शन करनेसे जीव फिर जठरयातना नहीं भोगते। भीम-चण्डीके समीप, 'विन्दतीश्वर' नामक प्रतिष्ठित शिवको पूजा करनेसे जीवकी उत्कट पापराशि दूर होती और चरम-कालमें मोक्षपद उनके करस्थ होता है। इसीतरह पित्रीश्वर नामक शिवलिङ्गके पास 'छागेश्वर' नामक एक महालिङ्ग प्रतिष्ठित हैं ; उनका दर्शन करनेसे फिर कभी जीवको संसारमें आ अनुक्षण पापी होना नहीं पड़ता।

त्रिपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाश अध्याय।

पिशाचमोचन।

स्कन्दने कहा, हे कुम्भसम्भव ! मैं कपा-र्दीशलिङ्गका परम माहात्म्य वर्णन करता हूं, अवहित चित्तसे सुनो। महादेवके अति प्रियपात्र, कपर्द्दी नामे एक गणना-यकने भगवान पित्रीशके उत्तर भागमें वह शिवलिङ्ग स्थापनकर इनके सामने विमलो-दक नामक कुण्ड खोदा था। इस कुण्डके जलस्पर्शसे मनुष्यका मालिन्य दूर होता है। इस विषयका एक इतिहास है, वह कहता हूं ; इसके सुननेसे पाप विनष्ट होता है। अगले समय त्रेतायुगमें वाल्मीकि नामे एक परमशैव, भगवान् कपर्द्दीशको अर्चनारूप तपस्यामें निमग्न थे। एक

दिन उन्होंने हेमन्तकालके अग्रहायण मासमें विमलोदक महातीर्थमें मध्याह्नस्नान समापनकर आपादमस्तक भस्मस्नान किया। फिर शिवलिङ्गके दक्षिणभागमें मध्याह्न कृत्य और मस्तकमें भस्म म्रक्षणाकर मध्याह्न सन्ध्याके उपरान्त "नमः शिवाय" यह पञ्चाक्षर मन्त्रका जप और कपर्द्दीश देवका ध्यानकर प्रणाम करते करते वामावर्त्तसे प्रदक्षिणा करने लगी। यतिगण दक्षिणावर्त्तसे, ब्रह्मचारीलोग वामावर्त्तसे और गृहस्थ वाम वा दक्षिणावर्त्तसे महादेवका नित्य प्रदक्षिणा करें। जहां लोमसूत्रद्वय और विष्णुमन्दिर वर्त्तमान है, वहां दक्षिणावर्त्तसे प्रदक्षिणा न करें— वृष, चण्ड, वृष, सोमसूत्र फिर वृष चण्ड, सोमसूत्र और चण्ड और वृष इस क्रमसे शम्भुका प्रदक्षिणा करेंगे; सोमसूत्र कभी लङ्घन न करेंगे। वह महातपस्वी इसतरह प्रदक्षिणाकर औं हु हुं हुं हुं, हुं हुं ऊंचे स्वरसे इस मन्त्रका पाठकर षड़जादि स्वरसे अङ्गभङ्गी क्रमसे नृत्य और हस्ततालके साथ आठो रागिणीमें आनन्दसे गाना गाकर जैसे ही उस सरोवरके किनारे उपविष्ट हुए, उसी समय देखा— वहां एक भीषणाकार घोर राक्षस खड़ा है। उसके ललाटदेशकी अस्थि कपोलस्थल और मुख शुष्क है; लोचनद्वय ईषत् पिङ्गल और कोटरमें प्रविष्ट हैं; केश ऊर्द्धस्थ और उसका अगलाभाग रुक्ष और शिदीर्ण है। राक्षसकी ग्रीवा स्थूल और दीर्घ है, नासिका अति निम्न, ओष्ठ शुष्क, दांत अति दीर्घ, मस्तक दीर्घ और विस्तृत, कानके ऊपरीभाग लम्बमान, श्मश्रुराजि पिङ्गलवर्ण, दीर्घ जिह्वा लक्‌लक् करती है, घाटिका (घण्टी) अतिविकृत, कण्ठके अधोभागकी अस्थिद्वय बाहर हुई हैं। स्कन्धद्वय दीर्घ होनेसे वह उत्कट दिखाई देता है, वाम और दक्षिण बाहुमूलका विवर निमग्न हो गया है। खर्व्व हस्तद्वय शुष्क हैं, इससे उंगली परस्पर विश्लिष्ट हैं, उसके आगे स्थूल नखावली नतमुख है। उसका क्रोड़देश रुक्ष और धूलिधूसरित, उदरचर्म्म पृष्ठसंलग्न; कटिदेशके ऊपरीभागमें पृष्ठवंशका निम्नभाग मांसरहित, कटिद्वय लम्बित, मुष्क, शुष्क, मेढ् क्षुद्र, उरुदेश दीर्घ उसमें मांस नहीं, जानुद्वय स्थूल, जङ्घादेश दीर्घ और शिराल, गुल्फस्थानकी अस्थि मोटी, पदद्वय अतिविस्तृत— उसमें कृश दीर्घ वक्र उंगलियां हैं। उन वृद्ध-तपस्वीने ऐसे विकट भीषणाकृति, अस्थिचर्म्मावशिष्ट, शिरालदेह, अति लोमश, मूर्त्तिमान् भयानकरसकी तरह सर्व्वप्राणिभयङ्कर, हृदयाकम्पी, दावदग्ध वृक्षकी तरह कृष्णवर्ण, चञ्चल-नयन क्षुधार्त्त और अति विस्तृतमुख उस राक्षसको सामने देख धीरभावसे पूछा, तुम कौन हो? इस जगह कहांसे आये हो? तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई है? हे राक्षस! मैं कृपाज्ञानसे

पूछता हूं, निर्भय हो कहो, नहीं तो हम विभूति वस्त्र परिधान करते हैं, शिवनाम महास्त्र धारण करते हैं—हम तापस हैं; तुम्हारे ऐसे राक्षससे हमलोगोंको किञ्चित्मात्र भी भय नहीं है। कृपालु तपोधनकी ऐसी बात सुनकर राक्षस प्रसन्न हो हाथ जोड़कर कहने लगा, हे भगवान् तापसवर! यदि आपकी अनुकम्पा हुई है, तो मैं आत्मवृत्तान्त कहता हूं, क्षणकाल अवहितचित्तसे सुनिये। गोदावरीतीरमें प्रतिष्ठान नामक एक देश है, वहीं मेरा वास था। मैं ब्राह्मण हूं, तीर्थस्थानमें प्रतिग्रह करता था। उसी कर्म्मफलसे मैंने ऐसी गति पाई है। वृक्षजलशून्य अति भीषण मरुभूमिमें मैंने बहुत समय बिताया था। हे मुने! उस मरुभूमिमें समय बितानेके समय असह्य क्षुधा, तृष्णा, शीत और आतप सभी सह्य किया था;—अधिक क्या गात्रीय वस्त्र पर्य्यन्त नहीं था। वर्षाकालमें मूषलधारसे दिनरात वृष्टि और प्रवल आंधी मेरी पीठके ऊपर बही है। जो तीर्थस्थलमें दान ग्रहण करते हैं और पर्व्वकालमें दान नहीं करते, वह महादुःखके मूलीभूत यह राक्षसयोनि पाते हैं। हे मुने! इसतरह वहां बहुत दिन बीतनेपर एक दिन मैंने सूर्य्योदयकालमें सन्ध्याविधि-वर्ज्जित मल-मूत्र त्यागकर शौच;चमनशून्य एक ब्राह्मणकुमारको आता देखा। मैं उसे मुक्तकच्छ, अशुचि और सन्ध्यावर्ज्जित देखकर भोग-वाञ्छासे उसके शरीरमें प्रविष्ट हुआ। हे मुने! मेरे अभाग्यवश वह ब्राह्मणपुत्रने अर्थलोभसे किसी एक वणिकके साथ इस काशी नगरीमें प्रवेश किया। हे मुनिसत्तम! जैसे ही उसने पुरीमें प्रवेश किया, वैसे ही मैं उसकी पापराशिके सहित क्षणकालमें उसके शरीरसे वहिर्गत हो बाहर ही रह गया। कारण, हे तपोनिधे! शिवकी आज्ञासे वाराणसीमें मेरे ऐसे प्रेत और महापातकको प्रवेशाधिकार नहीं है। आजतक उसका सब पाप उसके बाहर आनेकी आशासे सीमास्थ प्रमथके बाहर ही अवस्थान करते हैं। हे तपोधन! "यही आज, कल या परसों वह वहिर्गत होगा," ऐसी आशाकर आजतक मैं रहा, किन्तु अभीतक वह बाहर नहीं निकला। तब भी मैं निराश नहीं हुआ हूं, केवल आशापाशमें वद्ध हो निरवलम्बन अवस्थान करता हूं। हे तपस्विन्! आजतककी अद्भुत घटना कहता हूं, सुनिये। उस घटनासे जाना जाता है, कि शीघ्र अति शुभ होगा। मैं प्रतिदिन ही क्षुधार्त्त हो आहारान्वेषणमें प्रयाग पर्य्यन्त जाता हूं, किन्तु कहीं कुछ नहीं पाता। सर्व्वत्र प्रति काननमें फलवान् असङ्ख्य वृक्ष हैं, प्रति पदक्षेपमें भूतलमें निर्म्मल सलिलधाराके कितने ही जलाशय हैं। सर्व्वजनसुलभ और अगणेय भक्ष्य-

द्रव्य और विचित्र भूरि भूरि पानीय द्रव्य थे, किन्तु वह मेरे दृष्टिपथमें पतित होते ही दूर—बहुत दूर चले जाते थे। हे मुने! आज दैवात् एक चीरधारी संन्यासीको आते देख क्षुधासे पीड़ित हो मैं उसपर "बलपूर्वक आक्रमणकर भक्षण करूंगा," यह विचारकर शीघ्र उसके पास गया। जैसे ही उसपर आक्रमण करने चला, वैसे ही उसके मुखकमलसे विघ्नहारी पवित्र शिवनाम निर्गत हुआ। वह शिवनाम सुनते ही मेरा पाप दूरीभूत हुआ, मैंने तत्क्षणात् इस पुरीमें प्रवेश किया; क्षेत्ररक्षक प्रमथगणने एकबार दृक्पात भी नहीं किया। शिवनाम जिनके श्रवणमें प्रवेश करता है, यमराज भी उनके प्रति दृष्टिपात नहीं करते। मैं इसतरह उनके साथ पुरीकी मध्यसीमामें उपस्थित हुआ हूं; किन्तु उन चीरधारीने मध्यमें प्रवेश किया, मैं इस स्थानमें ही उपस्थित हूं। हे मुने! इस समय आपको देखकर मैं कृतार्थ हुआ। हे कृपालो! इस दारुण राक्षसयोनिसे मेरा उद्धार करिये। राक्षसकी ऐसी बात सुनकर कृपालु तपोधनने मन ही मन विचार किया, कि स्वार्थपरायण मनुष्यगणको धिक् है। पशु, पक्षी, मृग प्रभृति सभी अपना उदर भरते हैं—जो परोपकारी हैं, वह इस संसारमें धन्य हैं। आज मैं इस शरणागत राक्षसका अपने तपोव्ययसे निःसंशय उद्धार करूंगा। उन्होंने मन ही मन ऐसा विचारकर कहा, हे पिशाच! पापापनोदनके लिये इस विमलोदक सरोवरमें स्नान करो, इस तीर्थके प्रभावसे और भगवान् कपर्दीशका दर्शन करनेसे आज क्षणकालमें ही तुम्हारा पिशाचत्व दूर होगा। मुनिकी ऐसी बात सुनकर प्रसन्न हो, उस राक्षसने उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर कहा, हे नाथ मुनिसत्तम! देवता लोग इधर उधर जलकी रक्षा कर रहे हैं, स्नानकी बात तो दूर रही, जलपान—अधिक क्या, जलस्पर्श भी मुझे दुर्लभ जान पड़ता है। राक्षसकी ऐसी बात सुनकर अति प्रसन्न हो जगदुद्धारक्षम उन तपस्वीने कहा, लो यह विभूति, ललाटफलकपर भक्षण करो; इसमें ऐसे आश्चर्यकी महिमा है, कि स्वयं प्रेतनाथ किसी महापातकीको कोई भी बाधा नहीं देते, उनके किङ्करगण—कपालमें भस्म देखकर पाशुपतास्त्रभयसे अग्निध्वजाङ्कित जलाशयके दर्शनसे पथिककी तरह दूर भागते हैं, जो व्यक्ति शिवमन्त्र उच्चारणकर अङ्गमें विभूतिरूप-वर्म्म धारण करते हैं, हिंस्र जन्तुगण उनके पास नहीं आते। जो मनुष्य शिवमन्त्रपूत भस्म कपाल, वक्षःस्थल और बाहुमूलमें धारण करते हैं, हिंसकगण उनकी हिंसा नहीं करते। सब दुष्ट जन्तुओंसे रक्षा करती है इसलिये यह रक्षा है; भूतिकारिणी होनेकी वजह, विभूति है,

भाषन और भर्त्सन हेतु भस्म है; पांशुकारक होनेकी वजह पांशु और पापक्षारण हेतु क्षार है—पण्डितलोग ऐसा ही कहते हैं। यह बात कहकर उन्होंने डिबियासे भस्म लेकर राक्षसके हाथमें अर्पण किया। उस राक्षसने भी उसे श्रद्धाके साथ लेकर कपालमें मला। तब जलरक्षक देवताओंने उसे भस्मधारणपूर्व्वक पान और स्नान करते देख किञ्चिन्मात्र वारण न किया। फिर स्नान और सलिल पानकर जलाशयसे निकलते ही पिशाचत्व अपगत हो उसे दिव्य देहप्राप्ति हुई। उसने दिव्य माल्य दिव्य वस्त्र धारणकर दिव्य गन्धसे अनुलिप्त हो विमानमें चढ़ पवित्र मार्ग अनुसरण किया। आकाशपथमें जानेके समय उसने उन तपस्वीको नमस्कारकर ऊंचे स्वरसे कहा, हे भगवन्! आपकी कृपासे मैं अति दूषित पिशाचयोनिसे मुक्त हुआ हूं और इस तीर्थकी महिमाबलसे मैंने दिव्य देह पाई है। उसी अवधिसे इस तीर्थका नाम पिशाचमोचन हुआ, इसमें स्नान करनेसे दूसरेका पिशाचत्व भी दूर होगा। जो मानवगण महापुण्यजनक इस तीर्थमें स्नानकर सन्ध्या और तर्पणके अन्तमें पितृपुरुषके उद्देशसे पिण्डदान करेंगे, तो उनके पूर्व्वपितामहगण यदि दैवात् पिशाचभावको प्राप्त होंगे, तो वह भी उसे त्यागकर सद्गति पावेंगे। हे तपोधन! आज अग्रहायण मासकी शुक्लचतुर्द्दशी है, आज इसमें स्नानादि कार्य्यसे पिशाचत्व मोचन होगा। जो इस तिथिको वर्ष वर्षपर स्नानादि करेंगे, वह तीर्थ-प्रतिग्रहजनित पापसे मुक्त हो निष्पापदेह होंगे। इस पिशाचमोचन तीर्थमें स्नान, कपर्द्दीश देवकी पूजा और वहां अन्नदान करनेसे मनुष्यको दूसरी जगह भी पापभय नहीं रहेगा। अग्रहायण मासकी चतुर्द्दशी तिथिको कपर्द्दीश्वरके पास स्नानकर मनुष्य यदि अन्यत्र भी मरें, तब भी पिशाचत्वको प्राप्त नहीं होंगे। उ दिव्यपुरुषने यह बात कहकर मुनिको भू भूयः प्रणामकर दिव्य गति पाई। हे घट ज! उन तपोधनने भी यह अद्भुत घटना देख कपर्द्दीश्वरकी आराधनामें कालक्रमसे निर्व्वाणपद पाया। हे मुने! उस अवधिसे वाराणसीमें पिशाचमोचनतीर्थ सर्व्वपापहारी होनेकी वजह अति प्रसिद्ध हुआ। जो मनुष्य नियतचित्तसे इस पवित्र अध्यायको सुनते हैं, उनको भूत प्रेत पिशाचका भय कभी नहीं रहता। यह महत् उपाख्यान बालग्रह पीड़ित बालकोंके रोगके समय यत्नसहित पढ़नेसे रोगशान्ति होगी। इसको सुनकर यदि कोई देशान्तरमें गमन करते हैं, उन्हें कभी व्याघ्रचोरपिशाचादि की आशङ्का नहीं रहती।

चतुःपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाश अध्याय।

गणेशप्रेरण।

स्कन्दने कहा, काशीमें शिवपारिषद्गणने और जो सब लिङ्ग स्थापन किये थे, उनके सम्बन्धमें कहता हूं। हे कुम्भयोने! सुनो। पिङ्गलाक्ष नामक गणने (पारिषद्), कपर्दीश शिवके उत्तर पिङ्गलाक्षेश नामक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की थी। उन शिवलिङ्गके दर्शनमात्रसे पापसमूहका क्षय होता है। वीरभद्र महाप्रीतिके साथ, वीरभद्रेश्वर नामक देवदेव शिवलिङ्गका ध्यान, आजतक निश्चल भावसे करते हैं। उनके दर्शनमात्रसे वीरसिद्धि होती है। अविमुक्तेश्वर महादेवके पश्चाद्भागमें अवस्थित वीरभद्रेश्वर शिवकी पूजा करनेसे कभी मनुष्यको रणमें भागना नहीं पड़ता। हे मुने! स्वयं वीरभद्र साक्षात् वीरमूर्त्ति परिग्रहकर अविमुक्तक्षेत्रनिवासिगणके विघ्नसमूहका संहार करते हैं। शुभकारिणी भार्य्या भद्रा भद्रकालीके साथ युक्त वीरभद्रकी पूजा करनेसे मनुष्यको काशीवासफल मिलता है। किरात नामक गणने केदारके दक्षिणभागमें भक्तगणके अभयप्रद किरातेश्वर नामक लिङ्गकी प्रतिष्ठा की थी। श्रीमान् चतुर्मुख नामकगण वृद्धकालेश्वर शिवके समीप चतुर्मुखेश्वर शिवलिङ्ग स्थापनाकर निश्चलभावसे आज भी उनका ध्यान करते हैं। चतुर्मुखेश्वर लिङ्गके भक्तवृन्द, स्वर्लोकमें सर्व्वभोगाढ्य हो ब्रह्माकी तरह सब देवगण द्वारा पूजित होते हैं। निकुम्भ नामक गणद्वारा प्रतिष्ठित कुवेरेश्वर शिवके समीप निकुम्भेश्वरकी पूजाकर ग्रामान्तर गमन करनेसे कार्य्यसिद्धि होती है और अन्तमें शिवलोक आदर ग्रहीत होता है। काशीमें महादेवके दक्षिण अवस्थित पञ्चाक्षेश महालिङ्गकी पूजा करनेसे मानव जातिस्मरत्व पाते हैं। भारभूत नामक गणके प्रतिष्ठित भारभूतेश्वर शिवलिङ्गका अन्तर्गृहके उत्तरद्वारमें ध्यान करनेसे शिवलोकमें वास होता है, जो काशीमें भारभूतेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन नहीं करते, वह फलहीन वृक्षकी तरह पृथिवीके भारभूत हैं। हे कुम्भयोने! त्र्यक्ष नामक गण, त्र्यक्षेश्वर नामक परमलिङ्ग, त्रिलोचनके सामने स्थापनकर आज भी उनका ध्यान करते हैं। इस विषयमें वितर्क नहीं, कि जो लोग उन लिङ्गके भक्त हैं, उन्हें देहावसानमें शिवत्व प्राप्त होता है। क्षेमक नामक गणाधिपति, काशीमें स्वयं मूर्त्तिमान हो निश्चलभावसे आज भी सर्व्वग विश्वेश्वरका ध्यान करते हैं, जो व्यक्ति वाराणसीमें गणश्रेष्ठ क्षेमककी पूजा करते हैं, उनकी विघ्नराशि विनष्ट होती है और पद पदपर मङ्गल होता है। देशान्तरगत व्यक्तिके आगमनाभिलाषसे, क्षेमककी पूजा करेंगे, इससे उद्दिष्ट व्यक्ति मङ्गलसे प्रत्यागमन करते हैं। विश्वेश्वरके उत्तर अवस्थित लाङ्गली

नामक गणाके प्रतिष्ठित लाङ्गलीश्वर शिवलिङ्गका दर्शन करनेसे मानव रोगयुक्त नहीं होते। मात्र एकबार लाङ्गलीश्वर शिवपूजा करनेसे पञ्च लाङ्गलदानसम्भूत सर्व्वसम्पत्तिकर अविकल परम फल पाते हैं। विराध नामक गणाके प्रतिष्ठित विराधेश्वर शिवकी आराधना करनेसे; सर्व्वापराधसमन्वित होनेपर भी किसी स्थलमें अपराधदण्ड नहीं पाते। काशीवासिगण, दिन दिन जो अपराध करते हैं, विराधेश्वर शिवकी पूजा करनेसे वह अपराध शीघ्र क्षय होता है। दण्डपाणिके नैऋतभागमें अवस्थित विराधेश्वर शिवको यत्नपूर्व्वक प्रणाम करनेसे मनुष्य सब अपराधसे मुक्त होते हैं; इसमें सन्देह नहीं। सुमुख नामक गणद्वारा प्रतिष्ठित पश्चिमाभिमुख सुमुखेश्वर महालिङ्गका दर्शन करनेसे सब पापसे मुक्ति मिलती है। पिलपिला तीर्थमें स्नानकर सुमुखेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्य अन्तमें यमराजको सदा ही प्रसन्नमुख देखते हैं, उन्हें यमका अप्रसन्नमुख नहीं देखना पड़ता। आषाढ़ि नामक गणाके प्रतिष्ठित आषाढ़ीश्वरलिङ्ग हैं; आषाढ़ी पूर्णिमाको भक्तिपूर्व्वक उनका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापसे विमुक्त होते हैं। भारभूतेश्वरके उत्तर आषाढ़ माघको पूर्णिमाको आषाढ़ीश्वर शिवकी पूजा करनेसे, पाप द्वारा परितप्त होना नहीं पड़ता। आषाढ़ माघकी शुक्ल चतुर्द्दशी अथवा पूर्णिमाको इन शिवकी वार्षिकयात्रा करनेसे, मानव निष्पाप होते हैं। स्कन्दने कहा; हे मुने! इन सब गणाके विश्वेश्वरकी तुष्टिके लिये अपने अपने नामसे लिङ्ग स्थापनकर वाराणसीमें अवस्थित होनेपर, विश्वेश्वर फिर काशीप्रवृत्तिके लिये चिन्ता करने लगे, कि किसी हितकर व्यक्तिको आज भेजकर मैं परमा निर्वृत्तिका भजन करूंगा। योगिनीगण, सूर्य्य, विधाता, प्रभृ कर्णी प्रभृति गणसमूह, समुद्रगत नदीकी तरह जाकर फिर न लौटे। काशीमें जो प्रविष्ट होते, वह निश्चय ही मेरे उदरमें प्रविष्ट होते हैं; प्रदीप्त अनलमें प्रविष्ट घृतकी तरह वह लोग फिर निर्गम नहीं होते। जो लिङ्ग पूजापरायण हो काशीमें अवस्थित हैं, इसमें सन्देह नहीं, कि वह लोग मेरे ही जङ्गम लिङ्गस्वरूप हैं। काशीमें स्थावर जङ्गम, अचेतन सचेतन जो कुछ है, वह सभी मेरे लिङ्गस्वरूप हैं। दुर्वृत्तिगण उनके प्रति द्रोहाचरण करते हैं। वाक्यमें जिनके काशी, सुननेमें जिनको विश्वेश्वरचरित कथा है, मेरी ही तरह वह भी श्रेष्ठ पूजनीय मेरे लिङ्गस्वरूप हैं। वाराणसी, काशी, रुद्रावास यह वाक्य जिनके मुखसे सुस्पष्ट निकलते हैं, यम, उनपर प्रभुत्व नहीं कर सकते। जो आनन्दकाननमें आकर भी निरानन्दभूमि दूसरी जगहको मन ही मन भी वाञ्छा

करते हैं, काशीमें सदा निरानन्द होकर रहते हैं। मरण आज भी हो सकता है और बहुत दिन बाद भी हो सकता है, इसलिये कलिकालभीत पुरुषगण, काशीको कभी परित्याग न करेंगे। अव-श्यम्भावी फलसमूह पदपदपर फलते हैं। नहीं तो, लक्ष्मीनिकेतनशोभिता काशीको निर्व्वुद्धिगण परित्याग ही क्यों करें? वरं काशीमें पदपदपर सहस्र सहस्र विघ्न सह्य करेंगे, तथापि दूसरी जगह किसी स्थानमें निर्विघ्न राज्यकी कामना भी न करेंगे। ऐश्वर्य्यसम्भोग कितने निमे-षका काम है? परन्तु काशीमें इहपर-कालमें निरन्तर सुख पदपदपर मिलता है। मैं विश्वनाथ स्वयं नाथ हूं; काशी मुक्तिप्रकाशिनी हैं; गङ्गा अमृततरङ्गिनी हैं,—यह तीन वस्तु क्या नहीं दे सकतीं? पञ्चक्रोश-परिमिता अपरिमितैश्वर्य्यशा-लिनी अप्रमेया मेरी देह है; यह भक्त-गणका निर्व्वाणकारण है। मेरी नगरी काशी ही संसार-भार-खिन्न सदायाता यातकारी प्राणिगणकी निश्चित एकमात्र विश्रामभूमि है। यह काशी ही संसार-पान्थगणके पक्षमें, मनोरथफलमें अत्यन्त फलित, कल्पलतामण्डप है। चक्रवर्त्ती निर्व्वाण राजाका यह काशी ही सर्व्व-तापहर विचित्र छत्र है, इस छत्रका उच्च-दण्ड मेरा मूल है। जो पवित्र मानवगण, निरन्तर सुखप्राप्तिके लिये अवलीलाक्रमसे निर्व्वाणलक्ष्मी पानेकी इच्छा करते हों, वह काशीको परित्याग न करेंगे। मेरे इस आनन्दकाननके जो वनवासी हैं, उन्हें यहां सुस्वादु मोक्षलक्ष्मीफलसमूह प्राप्त होता है। निर्म्मम निर्म्मोह मुझे भी जिन काशीने मुग्ध किया है, वह विश्वमोहिनी किसको स्मरणीय नहीं हैं? परमानन्द-प्रकाशक होनेकी वजह उन काशीका नाम भी मधुर है, कौन पवित्र व्यक्ति उनका नाम 'काशी' 'काशी' कहकर नहीं जपते? जो निरन्तर काशीनामसुधा पीते हैं, उनके लिये पृथिवीव्यापी ज्योतिर्म्मय पथ होता है। मेरे ममतारहित और सर्व्वात्मा होनेपर भी काशी नाम जपकारी जनगण निश्चय मेरी वाराणसीके रहस्यसे अवगत होकर ही ब्रह्मा, सूर्य्य, गणेशसमूह और योगिनीगण, उस स्थानमें ही हैं; और किसी कारणसे अन्यत्र नहीं हैं। नहीं तो, वह सब योगिनी, वह सूर्य्य, वह ब्रह्मा और वह सब गण, मुझे छोड़कर अन्यत्र क्यों रहेंगे? वह लोग काशीमें रहे हैं यह बहुत ही अच्छा हुआ है। विपक्षराज्यका एक व्यक्ति भी राज्यमें भेदप्रयोग कर सकता है। मेरे स्वरूप वह लोग यदि सभी काशीमें प्रविष्ट हुए हैं; तो निश्चय मेरे जानेके लिये वह लोग यत्न करेंगे। और सब अपने पार्श्वचरको भी वहीं भेजूं। उन सब श्रेष्ठ व्यक्तिगणके वहां रहनेसे, पीछे मैं भी जा सकूंगा।

महादेवने यह विचारकर गजाननको बुलाकर "पुत्र! यहांसे काशी जाओ, वहां रहकर गणसमूहके साथ कार्य्यसिद्धिके लिये यत्न करो; मेरा विघ्न परिहार और राजाका विघ्न करो" कहकर काशीमें प्रेरण किया। स्थिति-वेत्ता गणपतिने धूर्जटिका शासन मस्तकपर धर शिवस्थितिके लिये शीघ्र काशीप्रस्थान किया।

पञ्चपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाश अध्याय।

गणेशका मायाविस्तार।

स्कन्दने कहा, फिर गजाननने महादेवका आदेश पाकर मूषिकपृष्ठपर आरूढ़ हो काशी आगमनका उपाय सोचते सोचते मन्दराचलसे प्रस्थान किया और वह अविलम्ब बाराणसी नगरीमें उपस्थित हो ब्राह्मणमूर्त्ति परिग्रहकर चारो ओर शुभलक्षण देखते हुए पुरीमें प्रविष्ट हुए। वह वृद्ध देवज्ञवेशसे नगरके प्रति अन्तःपुरमें विचरणकर पुरवासीवर्गका प्रीतिविधान करने लगे और स्वयं निशाभागमें नगरवासियोंको स्वप्न दिखा प्रभातमें उनके घर जाकर उसका दोषगुण कहने लगे। हे पौरगण! तुमलोगोंने गत रजनीयोगमें जो जो स्वप्न देखा है, वह तुम लोगोंके कौतूहलके लिये मैं कहे देता हूं। तुमने रात चार प्रहरके समय एक मृहाङ्कदको स्वप्नमें देखा था और उसमें मानो डूबते डूबते किनारे आ रहे थे; किन्तु उसका ऐसा चिकना कीचड़ था कि बारबार उठकर भी निमग्न होते थे;—यह स्वप्न प्रशस्त नहीं है, इसका परिणाम अति भयावह है। तुमने, जो स्वप्नमें काषायवस्त्रधारी मुण्डितमुण्ड पुरुषको देखा था वह तुम्हें दारुण सन्ताप उत्पादन करेगा। तुमने जो रातके समय सूर्य्यग्रहण देखा था, वह तुम्हारे पक्षमें निश्चित ही महाअनिष्टकारी होगा। तुमने दो इन्द्रधनु उगते देखे थे, यह तुम्हें शुभ नहीं है। तुमने स्वप्नमें देखा था, कि पश्चिम ओरसे सूर्य्यने आकर, गगनमें उदयीभूत चन्द्रको भूतलमें पातित किया था—यह राज्यकी भयसूचना देता है। तुमने जो एक ही समय दो केतुग्रहको उदित हो परस्पर युद्ध करते देखा था; वह शुभ नहीं है, केवल राज्य-भङ्गका कारण है। तुमने जो स्वप्नमें शीर्णकेश, विशीर्णदशन आत्माको दक्षिण ओर ले जाते देखा था, उसे अपना और आत्मीयस्वजनका भयप्रद जानना। तुमने रात्रिके शेषमें स्वप्न देखा था, कि राज-प्रासादका ध्वज भग्न हुआ है, उसका फल महाउत्पात और राज्यक्षय समझना। तुमने जो स्वप्नमें क्षीरसमुद्रकी तरङ्गमें नगरी-प्लावित देखा है; उससे समझना, कि तीन चार पक्षमें पौरगणको महती

महा उपस्थित होगी। तुमने जो स्वप्नमें देखा है, कि वानरयान तुम्हें दक्षिण ओर वहन किये लिये जाता है, उससे समझना, कि तुम्हें अचिरमें पुर परित्याग करना पड़ेगा। तुमने जो रातके अन्तमें—मुक्तकेशी विवसना एक नारी रोती है—स्वप्न देखा है; वह राजलक्ष्मी हैं, उन्होंने यहांसे प्रस्थान किया। तुमने जो देवालयके कलसको टूटकर गिरते देखा है, उससे कुछ ही दिनोंमें निश्चय ही राज्यभङ्ग होगा। तुमने देखा था,—मृगयूथ, नगरीको चारो ओरसे घेरकर महाशब्द करते हैं; उससे एक महीनेके भीतर ही वासोच्छेद होगा। तुमने जो स्वप्नमें देखा था, कि गृध्र, बक, चील्ह प्रभृति पक्षिगण नगरके ऊपरी भागमें उड़ते हैं; इससे अधिवासीवर्गका विशेष अमङ्गल समझना। विघ्नराजने कितने ही दुःस्वप्नोंकी बात इधर उधर कहते फिरते अनेक नगरवासीका मन उच्चाटन किया। वह किसी किसीको सामने ग्रहगति दिखाकर कहने लगी,—यह जो शुक्र, शनि, मङ्गल तीन ग्रह एक राशिमें अवस्थान करते हैं, यह शुभजनक नहीं। यह जो धूमकेतु गगनमें सप्तर्षिमण्डल भेदकर पश्चिम ओर जाते हैं, इससे राजाका विनाश होगा। यह जो शनिग्रह अतीचारसे गमनकर फिर चक्रचारी हो पापग्रहके साथ युक्त हुए हैं, वह शुभप्रद नहीं। गत दिवस, जो भूमिकम्प हुआ था, उसे मैंने और नगरवासियोंके हृतकम्पका कारण समझा। उत्तर और दक्षिण ओर जो उल्का प्रचण्डरवसे धावित हो आकाशमें लयको प्राप्त हुआ, वह शुभ नहीं है। जब उस चौतरेका लगा हुआ चैत्यवृक्षका वह वृहत्मूल, प्रचण्ड वात्यावेगसे उन्मूलित हुआ है, तो महाउत्पात अवश्यंभावी है। सूर्य्योदयके समय शुष्कवृक्षके ऊपर बैठकर वह वायस, जो कठोर शब्द करता है, यह महाभीतिजनक होगा। विपणिके भीतरसे अरण्यचारी मृगद्वय, अन्वेषणकारियोंके सामनेसे, जो वेगसे भागी हैं, वह पौरवर्गके लिये सम्यक् अलक्षण है। आम्र और शालवृक्षके वोरपर, जब हिंसा दिखाई देती है, तो पुरवासियोंके लिये अकालमें भी कालभय उपस्थित जान पड़ता है। इसतरह भय दिखाकर कपटद्विजमूर्त्तिधारी उन विघ्ननायकने, कितने ही पुरवासियोंको नगरसे उच्चाटित किया। फिर वह अपने मायाबलसे अन्तःपुरमें प्रवेशकर प्रत्यक्षफल बता स्त्रियोंके विश्वासभाजन हुए। उन्होंने किसी नारीसे कहा, अहो सुलक्षणे! तुम्हारे तीन पुत्र हुए थे, उनमेंसे एक पुत्र घोड़ेकी पीठसे गिरकर मर गया। किसीका गर्भलक्षण देखकर कहते, यह परमासुन्दरी एक कन्या प्रसव करेंगी। यह पहले पतिसौभाग्यसे वञ्चिता थीं, अब उनको सोहागिनी हुई

हैं; वह राजा और रानीके परम प्रेमास्पद हैं; इन्हें राजाने अपने हाथसे मुक्ताहार दिया था और आनुमानिक पांच छः दिन हुए होंगी राजाने प्रसन्न होकर इनसे "सौ गांव दूंगा" कहा था,—इसतरह प्रत्यक्ष फल कहकर, वह रानियोंकी अति श्रद्धाके पात्र हुए। वह सब अन्तःपुरमें उनका बहुगुण कीर्त्तनकर कहने लगीं;—आहा! यह ब्राह्मण कैसे सर्व्वविषयमें पारदर्शी, सुशील, रूपवान्, सत्यवादी, मितभाषी, निर्लोभी, उदारप्रकृति, सदाचारी, जितेन्द्रिय, अल्पमें सन्तुष्ट, प्रतिग्रहविमुख और सदा प्रसन्नमुख हैं! इनकी असूया वा वञ्चनाबुद्धि नहीं है; श्रुति, स्मृति, इतिहास, ज्योतिष और चतुःषष्टि कला इनकी कण्ठस्थ हैं; वह कृतज्ञ, परनिन्दाविरत, सदुपदेष्टा, पुण्यात्मा, विशुद्धचरित्र, क्षमाशील, धीर, कुलीन, दाता, भोक्ता और निर्म्मलचित्त हैं। ऐसा बहुगुणसम्पन्न व्यक्ति हम सबने कहीं नहीं देखा। इसतरह अन्तःपुरमहिलागण परस्पर उनका गुणग्राम वर्णनकर समय बिताने लगीं। एक दिन रानी लीलावतीने अवसर देख, राजा दिवोदाससे उनकी बात कही। कहा, कि महाराज! एक अति गुणवान सुलक्षणाक्रान्त दक्ष ब्राह्मण हैं, वह साक्षात् परमब्रह्मनिधि हैं, उनका दर्शन करना होगा। रानीके यह कहनेपर राजाने अनुमति प्रदान की। रानीने तत्क्षणात् साक्षात् ब्रह्मण्यतेजकी तरह तेजस्वी उन ब्राह्मणको बुलानेके लिये एक विचक्षणा दासी भेजी। फिर राजा दूसरे उन भूदेवको आते देखकर "जैसा आकार, वैसा ही गुण है" मन ही मन आनन्द प्रकाश करने लगे। तब नृपतिके गात्रोत्थानकर ही तीन पद अग्रसर हो उनका सम्मान करनेपर उन्होंने चतुर्व्वेदोक्त आशीर्व्वादवाक्यसे उनका अभिनन्दन किया। राजाने भी उन्हें प्रणाम किया। फिर उनके आदरसे आसनमें उपविष्ट होनेपर, राजाने उनसे कुशल पूछी। वाक्य-प्रयोगमें कुशल वह राजा और ब्राह्मणश्रेष्ठ आपसमें कुशलप्रश्नकर और उसके उत्तरसे सन्तुष्ट हुए। फिर राजाकी बात समाप्त होनेपर वह सम्मान और पूजाप्राप्त होकर विदा हो अपने घर आये। उनके जानेके उपरान्त राजा दिवोदास रानी लीलावतीसे उस ब्राह्मणकी भूयसी प्रशंसा कर कहने लगे,—अहो गुणवति देवि, लीलावति! तुमने जैसे ब्राह्मणका विषय वर्णन किया था, मुझे वह उसकी अपेक्षा अधिक गुणवान् जान पड़े। वह क्या वर्त्तमान, क्या बीती घटना, सभी कह सकते हैं; अब प्रातःकाल बुलाकर कुछ भविष्यत् पूछना होगा। फिर विविध भोगविभवसे रात बीतनेपर राजाने प्रभातमें उन ब्राह्मणको बुलाया। उन्हें भक्तिपूर्व्वक वस्त्रादि

प्रदानसे संस्कृतकर राजाने एकान्तमें निज अवस्थाघटित प्रश्न किया, राजाने कहा,— यह मुझे निश्चय बोध होता है, कि एकमात्र आप ही ब्राह्मणगणमें श्रेष्ठ हैं। मेरी धारणा यह है, कि आपकी ही बुद्धि यथार्थ तत्त्वदर्शिनी है, औरोंकी ऐसी नहीं है। हे विप्र! आपको शान्त, दान्त, महामति और कृपासागर देख मैंने कुछ पूछनेका अभिलाष किया है, यथायथ कहिये। मैंने अनन्य पार्थिवसदृश इस पृथिवीका शासन किया है, विविध दिव्य-भोग और विभवराशि भी मेरी अभुक्त नहीं हैं। मैं अहोरात्र ध्यान न कर और दुष्टका दमनकर अपने पुत्रकी अपेक्षा अधिकभावसे प्रजावर्ग पालनमें सदा नियुक्त था, द्विजचरण-सेवाके सिवा मुझमें किञ्चिन्मात्र पुण्यबल नहीं है। वह जो कुछ हो, इन सब अवक्तव्य विषयके कहनेका प्रयोजन नहीं है; यही पूछना है, कि अब मेरे चित्तने सब कामसे औदासीन्य क्यों अवलम्बन किया है। अतएव हे आर्य्य! इस विषयका विचारकर आप भावीफल प्रकाश कीजिये। ब्राह्मणने कहा, नृपतिवर्गके जितने सामान्य कार्य्य भी हों, सदा एकान्तमें पूछना बुद्धिमान व्यक्तिका कर्त्तव्य है; न पूछनेसे मुझे भी महापमान-भयसे नृपके सामने कुछ कहना उचित नहीं। अतएव जब आपने निर्जनमें पूछा है, तो मैं अवश्य कहूंगा; ऐसा करनेसे आपके चित्तनिर्व्वेदका कारण दूरीभूत होगा। हे महाबुद्धिसम्पन्न नृपते! मैं सच कहता हूं, आप सर्व्वतोभावसे शोभाग्यशाली महापराक्रान्त वीर हैं। आप जैसे पुण्यवान्, यशस्वी और बुद्धिमान हैं; मैं समझता हूं, अमरावतीके इन्द्र भी वैसे नहीं हैं। आप समझमें बृहस्पति, प्रसन्नतामें सुधाकर, तेजमें सूर्य्य, प्रतापमें अग्नि, बलमें प्रभञ्जन और धनदानमें धनद हैं। आप शासनमें रुद्र, रणस्थलमें निऋति, दुष्टशासनमें पाशभृत्, दुर्ज्जनके पक्षमें यम, इन्द्रकुलमें इन्द्र, क्षमागुणमें सर्व्वंसहा, गाम्भीर्य्यमें समुद्र हैं। उदारतामें हिमालय, नीतिशास्त्रमें शुक्राचार्य्य और राज्यपालनमें साक्षात् मनु हैं। आप जलधरकी तरह सन्तापहारी, गङ्गाजलकी तरह पवित्र और वाराणसीकी तरह सब जीवोंके सद्गतिदाता हैं। आप संहारमें रुद्र, पालनमें चतुर्भुज और विधानमें विधाता हैं। आपके मुखपद्ममें सरस्वती, पाणिपद्ममें कमला और क्रोधमें हलाहल विद्यमान है। आपकी बातमें अमृत और आपकी भुजद्वय अश्विनीकुमारकी तरह विराज रहे हैं। हे भूपते! आप सर्व्वदेवमय हैं, आपमें समस्त ही वर्त्तमान है। अतएव आपका भावीफल मैं यथार्थ जानता हूं। हे राजन्! आजसे अष्टादश दिवसमें कोई ब्राह्मण उत्तरदेशसे आकर आपको उपदेश प्रदान करेंगे; अविलम्ब उनका वाक्य

पालन करनेसे आपकी सब मनोभीष्टसिद्धि होगी। यह कहकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ विदा ले राजाके अनुमतिक्रमसे अपने आश्रमको गये। राजा भी आसर्थ्यान्वित हुए। विघ्नराजने इसतरह निज माया प्रभावसे, पौरजन, अन्तःपुर महिला और राजा सहित समग्र नारीको वशनापन्न किया था। फिर विघ्नराज अपनेको कृतार्थ समझ और अपनेको बहुत तरहसे विभक्तकर काशीमें अवस्थिति करने लगे। हे कुम्भयोने। जब दिवोदास नहीं थे, उस पूर्व्वकालमें जो जो अपने स्थान थे, गणेशने वह सब स्थान अलङ्कृत किये। नरपति दिवोदासके विष्णुद्वारा उच्चाटित होनेपर विश्वकर्म्माके काशीनगरीको फिर नई तरहसे गठन करनेपर, देव विश्वनाथने मन्दरपर्व्वतसे सुन्दरपुरी वाराणसीमें स्वयं आकर, पहले गणपतिका स्तव किया था। अगस्त्यने कहा, भगवान् देवदेवने विघ्नराजका कैसे स्तव किया था? और उन विघ्नराज विनायकने अपनेको कौन कौन रूपमें विभक्त किया था और काशीपुरीमें वह किस किस नामसे अवस्थित हैं?—हे षड़ानन यह सब संक्षेपमें कहिये। षड़ानन कुम्भयोनिकी ऐसी बात सुनकर मङ्गलमय गणेशकथा यथायथ कहने लगे।

षट्पञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाश अध्याय।

ढुंढिविनायक-प्रादुर्भाव।

स्कन्दने कहा, हे मुनिसत्तम! रुद्रगणपरिवेष्टित देवर्षिगणयुक्त पार्व्वती सहित विश्वेश्वर, नागाङ्गनागण द्वारा नीराजित हो शुभा वाराणसी पुरीमें प्रविष्ट हुए। महाशाख, विशाख और नेगमेय हमसब सङ्ग चले। नन्दी भृङ्गी आगे आगे चलने लगे। सनकादि ऋषिगण विश्वेश्वरका स्तव करने लगे। सकल देवायतनके अधिपति और दिक्पालगण उनका अभिनन्दन करने लगे। मूर्त्तिमान तीर्थगण तीर्थप्रदर्शन करने लगे; गन्धर्व्वगण मङ्गलगीत गाने लगे। अप्सराओंने नर्त्तितकरपल्लवसे उनकी पूजा आरम्भ की। आकाशमें अनाहत वाद्यध्वनि चारो ओर उनका अनुमोदन करने लगी। ऋषिगणने वेदोच्चारणघोषसे दिङ्मण्डल वधिर कर डाला। चारणगण स्तव करने लगे; विमानसमूहने उन्हें चारो ओरसे घेर लिया! महादेवके इधर उधर सुरवधूगणकी मुष्टिभ्रष्ट लाजवृष्टि होने लगी। भगवानको रोमाञ्च होने लगा। कितनी ही विद्याधरीगण उन्हें माल्योपहार प्रदान करने लगीं! यक्ष, गुह्यक, सिद्ध प्रभृति गगनचरगण, उनका अभिनन्दन करने लगे। निमित्तसूचक मृगगण, पहले होसे काशीप्रवेशकी सुनिमित्त सूचना देने लगे। हृष्टमुखकिन्नर किन्नरीगण वर्णन करने लगीं।

विष्णु, महालक्ष्मी, ब्रह्मा, विश्वकर्म्मा, नन्दी और गणेश, महोत्सव प्रकाश करने लगे। वृषराजसे उतरकर वृषध्वज सब देवताओंके सामने गणपतिको आलिङ्गनकर कहने लगे, अपनी अति दुर्लभा इस शुभा वाराणसी नगरीको मैंने प्राप्त किया, वह इस बालकका ही प्रसाद है। जगन्मण्डलमें पिताको जो दुःसाध्य है, वह पुत्र द्वारा सुसाध्य होता है, इस विषयमें मैं दृष्टान्त-स्थल हूं! इन गजाननने जिससे मेरा काशी समागम हो, उस विषयमें अपने बुद्धि प्रभावसे कैसा अनुष्ठान किया था! मैं ही पुत्रवान् हुआ हूं। जिस विषयकी चिन्ता मैं बहुत दिनसे कर रहा था, किन्तु कार्य्य कुछ भी नहीं कर सका; मेरे पुत्रने अपने पौरुषप्रभावसे मेरा वही अभिलषित विषय मेरे करस्थित कर दिया है। यह बात कहकर इन्द्रादिस्तुत त्रिपुरान्तक हृष्टचित्त हो स्पष्टवचनसे स्तव करने लगे, हे विघ्नकारकाद्य! हे भक्तनिर्व्विघ्नकारिन्! तुम विघ्नहीन व्यक्तियोंके विघ्नविनाशक और महाविघ्नसम्पन्न व्यक्तियोंके एकमात्र विघ्न-कर्त्ता हो; तुम्हें सर्व्वोत्कर्ष लाभ हो। हे सर्व्वगणाधिपति सर्व्वगणाग्रगण्य! गणसमूह तुम्हारे चरणकमलमें प्रणत हों। हे अगणित सद्गुण! तुम्हें सर्व्वोत्कर्ष लाभ हो। हे सर्व्वग! सर्व्वेश! सर्व्ववृद्धिके एकमात्र आश्रय! सर्व्वमायाप्रपञ्चाभिज्ञ सब कामके आगे पूजित गणेश! तुम्हें सर्व्वोत्कर्ष लाभ हो हे सर्व्वमङ्गल-माङ्गल्य! हे सर्व्वमङ्गल! हे अमङ्गलो-पशमन! महामङ्गलहेतो! तुम्हें सर्व्वोत्-कर्ष हो। हे सृष्टि ओंके बन्दनीय! तुम्हारी जय हो; हे प्रतिकर्त्ताके नम-स्कारभाजन! तुम्हारी जय हो; हे संसारकारीके स्तवनीय! तुम्हारी जय हो; हे सज्जनगणके कर्म्मसिद्धिदाता! तुम्हारी जय हो! हे सिद्धिविधायक! तुम्हारे पादपद्म सिद्धगणके बन्दनीय हैं। सर्व्वसिद्धिके अद्वितीय आश्रय हो, तुम महा-सिद्धि ऐश्वर्य्यके सूचक हो; तुम्हारी जय हो। हे गुणातीत! तुम अशेषगुणके आकर हो। गुण द्वारा ही तुम सबके अग्रगण्य हो। हे परिपूर्णचरित्र! हे पूर्णप्रयोजन! हे गुणवर्णित! तुम्हारी जय हो। हे सर्व्वसैन्याध्यक्ष! हे इन्द्रपराक्रम-बर्द्धक! हे महापराक्रम बालक! तुम्हारा दन्ताग्र बलाकारकी तरह उज्ज्वल है; तुम्हारी जय हो। हे अनन्तमहिमाके आधार! हे पर्व्वतविदारण! तुमने दिग्ह-स्तियोंको अपने दन्ताग्रमें ग्रथित किया था, हे नागभूषण! तुम्हारी जय हो। हे करुणामय! हे दिव्यमूर्त्ते! तुम्हें जो नम-स्कार करते हैं, पृथिवीमें सर्व्वपापके आश्रय होनेपर भी वह मुक्तिभागी होते हैं। सदा ही तुम उन लोगोंका महान् उपसर्ग-समूह हरण करते और उन्हें तुम स्वर्ग और मुक्ति भी प्रदान करते हो। हे विघ्न-

राज! इस पृथिवीमें जो चणकाल मात्र तुम्हारे करुणाकटाचसे अवलोकित हुए हैं, उन सब पुरुषप्रधानका सब कल्मष चय हो जाता और वह लक्ष्मीके कटाचपात्र होते हैं। हे प्रणतजनगणके विघ्नविनाश-दच! हे दाचायाणी-हृदयकमलके आदित्यस्वरूप! तुम्हारा स्तव करनेवाले, जो इस जगत्में विख्यात सुनाई देते हैं, इसमें कोई आश्चर्यका विषय नहीं है; किन्तु यही विचित्र है, कि वह लोग ही यहां गणनायक होते हैं। जो तुम्हारे पदयुगलकी सेवा करते हैं, वह पुत्रपौत्रधनधान्यसे समृद्धिसम्पन्न होते और बहुत भृत्यगण उनके चरणकमलकी सेवा करते हैं; वह राजभोग्य निर्म्मल लक्ष्मीके अधिकारी होते हैं। परम कारण! तुम कारणसमूहके कारण हो, वेदवित्‌गणके एकमात्र तुम्ही ज्ञेय हो; हे वाक्यसमूहके मूल! हे वाक्यके अगोचर! चराचर स्वरूप! दिव्यमूर्त्ते! तुम अनिर्व्वचनीय अन्वेषणीय पदार्थ हो। हे चराचरनाटकसूत्रधार! चतुर्व्वेद और ब्रह्मादि देवगण भी यथार्थरूपसे तुम्हें नहीं जान सकते। एक तुम्हीं समस्त जगत्‌का संहार, पालन और सृष्टि करते हो। हृदयके भी अगम्य! तुम्हारो और स्तुतिवाद विन्यास क्या है? त्रिपुर, अन्धक, जलन्धरप्रमुख दैत्यगण, तुम्हारे दुष्टदृष्टिशरनिकरसे ही निहत हुए थे, फिर मैंने (नाममात्रको) उनको हत किया। हे सिद्धिप्रद! तुम्हारे बिना अभीष्ट तुच्छकार्य्य भी साधन करनेमें किसकी शक्ति है? अन्वेषण अर्थसे ढ़ुंढि (ढ़ुन्‌ढ) धातु प्रसिद्ध है; तुम्हारे सब पुरुषार्थमें ही अन्वेषणीय होनेकी वजह तुम्हारा नाम 'ढुंढि' है। हे विनायक ढुंढिराज! इस जगत्‌में तुम्हारे सन्तोषके सिवा क्या कोई प्राणी काशीप्रवेश लाभ कर सकता है? हे ढुंढे! जो काशीवासी मानव, तुम्हारे पादपद्मको पहले प्रणामकर फिर मुझे नमस्कार करते हैं, मैं उनके कर्णमूलके निकटवर्त्ती हो पीछे ऐसे एक वस्तुका उपदेश करता हूं, जिससे फिर उन्हें संसारी होना नहीं पड़ता। मानव, मणिकर्णिकामें सचेलस्नानके उपरान्त देवता ऋषि मानव और पितृगणका तर्पणकर, धूलि-धूसरित चरणसे ज्ञानवापी तीर्थमें आकर तुम्हारा भजन करेंगे; तुम काशीनगरी फलदानमें दचा हो। तुम्हें सद्गन्धसम्पन्न मोदकसमूह, उत्तम धूप, दीप, और सुगन्धबहुल अनुलेपन द्वारा पहले प्रीतियुक्तकर पीछे मुझे प्रसन्न करनेपर, हे ढुंढे! कौन सिद्धि नहीं पा सकता? इसके उपरान्त वह व्यक्ति यथाक्रमसे काशीके अन्यान्य तीर्थ पर्य्यटन करनेपर भी तुम्हारे करुणाकटाचसे हित-प्रतिघातक उपसर्ग विदूरितकर इस काशीका अविकल फल पाता है हे ढुंढिगणेश! काशीमें नित्य प्रातःकाल जो तुमको नमस्कार करते हैं, उनको

अखिल विघ्नराजि विनष्ट होती और इस-काल या परकालमें जगन्मण्डलस्थ कोई वस्तु उनके दुर्लभ नहीं होती। हे ढुंढि गणेश! जो व्यक्ति, तुम्हारा नाम जपते हैं, अष्टसिद्धि, हृदयमें प्रतिदिन उनका जप करती हैं; वह व्यक्ति विविध देवभोग्य भोगके उपरान्त, अन्तमें निर्व्वाणलक्ष्मी द्वारा वृत होते हैं। हे सब सिद्धिपद ढुंढि-राज! जो व्यक्ति दूर रहकर भी नित्य तुम्हारा पादपीठ स्मरण करते हैं, वह काशीस्थितिका अविकल साफल्य पाते हैं; नहीं तो नहीं पाते। मेरी बात कभी मिथ्या होनेकी नहीं। हे महाभाग! मैं जानता हूं, तुम इस काशीक्षेत्रका असंख्य विघ्न अनेक प्रकारसे विनष्ट करते हुए नाना-रूपसे यहां अवस्थान करते हो। हे अनघ! जहां जहां तुम्हारा जो रूप है, वह वह स्थान और वह वह रूप कीर्त्तन करता हूं, यह देवतागण उसे सुनें। प्रथम, तुम मेरे अल्प दक्षिणांशमें, ढुंढिराजरूपमें अवस्थित हो; ढूंढ ढूंढकर सब व्यक्तिको पुरुषार्थ प्रदान करते हो। हे पुत्र गणेश! जो मङ्गलवार चतुर्थी पाकर सद्गन्धसम्पन्न-मोदकसमूह, गन्ध और माल्य द्वारा तुम्हारा विविध पूजाविधान करते हैं, उस कामके लिये मैं उन्हें पारिषद्गणमें अन्तर्निविष्ट करता हूं। हे गजानन! ढुंढे! प्रति चतुर्थीको जो सम्यक प्रकारसे तुम्हारी पूजा करते हैं, उनकी ही गाढ़बुद्धि और वह

क्रती हैं; और वही सब प्रकारकी विघ्नकी मस्तकसे सम्पूर्णरूपसे वमापद स्थापनकर परिशेषमें गजाननत्व पाते हैं। हे ढुंढे! माघमासकी शुक्लचतुर्थीको नक्तव्रत-परायण हो जो तुम्हारी पूजा करते हैं, वह देवताओंके भी पूज्य होते हैं। व्रतावलम्बन पुरःसर एक वर्षव्यापी आज्ञाकर माघमासकी शुक्लचतुर्थी-शुक्लतिलनिर्म्मित लड्डू भोजन करना पड़ता है। हे ढुण्ढे! क्षेत्रसिद्धि प्रार्थिगण, माघ शुक्ल चतुर्थीको तुम्हारी प्रीतिके लिये यत्नसहित यात्रा करेंगे। यह तुम्हारी यात्रा सर्व्व उपसर्ग हरण करेगी। का-शीमें जो व्यक्ति, नैवेद्य तिल और लड्डू-समूह द्वारा पूर्व्वोक्त यात्रा नहीं करते, मेरे आज्ञाक्रमसे सहस्र सहस्र उपसर्ग उन्हें पीड़ित करते हैं। जो मन्त्रज्ञ व्यक्ति, इस चतुर्थीको तिलाज्यद्रव्य द्वारा होम करेंगे, उनको मन्त्रसिद्धि मिलेगी। हे गजानन ढूंढे! वैदिक अथवा अवैदिक तुम्हारा चाहे कोई मन्त्र क्यों न हो, तुम्हारे निकट जपनेसे वह मनुष्यकी इष्ट-सिद्धि प्रदान करेगा। ईश्वरने कहा, यह निश्चय समझो, कि जो व्यक्ति, मत्कृत तुम्हारे इस स्तवका पाठ करेंगे, उन्हें विघ्नराशि कभी पीड़ित न कर सकेगी। यह पवित्र ढुंढिस्तुति ढुंढिके समीप जो लोग पढ़ते हैं, सर्व्वविध सिद्धि सदा उन्हें भजा करती है। मानवके अत्यन्त

संयतचित्तसे इस स्तवका पाठ करनेपर मानसपाप द्वारा भी उन्हें कभी आक्रान्त नहीं होना पड़ता। ढुंढि स्तोत्रका पाठ करनेसे मानव,—पुत्र, कलत्र, क्षेत्र, प्रधान प्रधान अश्व, उत्कृष्ट गृह, धन और धान्य पाते हैं। मोक्षप्रार्थी व्यक्ति, मेरे कहे हुए इस सर्व्वसम्पत्तिसम्पादक स्तवका सदा यत्नपूर्व्वक पाठ करेंगे। पहले इस स्तोत्रका पाठकर पीछे किसी कार्य्योद्देशसे जानेपर सर्व्वविध सिद्धि सदा उनकी अग्रवर्त्ती होती हैं। क्षेत्ररक्षाके लिये ढुंढि, और जहां जहां हैं, वह सब कहता हूं, देवगण सुनें। काशीमें असिगङ्गासङ्गमके पास, अर्कविनायक नामक गणेश अवस्थित हैं। रविवारको उनका दर्शन करनेसे सब पापकी शान्ति होती है। मनुष्य इस काशीक्षेत्रके दक्षिण भागमें अवस्थित सर्व्वदुर्गतिविनाशी दुर्ग नामक गणेशकी यत्नपूर्व्वक पूजा करेंगे। भीमचण्डीके समीप काशीक्षेत्रके नैऋतकोणमें अवस्थित भीमचण्डविनायकका (गणेश) दर्शन करनेसे महाभय शान्त होता है। इस क्षेत्रके पश्चिम भागमें अवस्थित "देहलीविनायक" भक्तोंके सब विघ्न दूर करते हैं, इसमें संशय नहीं। काशीक्षेत्रके वायुकोणमें अवस्थित उद्दण्ड नामक गणेश, भक्तोंका उद्दण्ड (प्रचण्ड) विघ्नसमूह भी सदा दण्ड करते हैं। काशीके उत्तर अवस्थित पाशपाणिविनायक, भक्तिके साथ काशीवासियोंके विनायकग्रहादिको, पाशावद्ध करते हैं। गङ्गा और वरणासङ्गमके समीप अवस्थित रमणीय "खर्व्वविनायक" भक्तसज्जनोंके महा महा विघ्नसमूहको भी खर्व्व करते हैं। काशीके पूर्व्वभागमें यमतीर्थके पश्चिम अवस्थित प्रसिद्ध "सिद्धिविनायक" साधकोंको शीघ्र सिद्धिप्रदान करते हैं। काशीके बाह्य-आवरणस्थित यह अष्टविनायक, अभक्तगणको उत्खाटित और भक्तगणको सिद्धिप्रदान करते हैं। द्वितीय आवरणमें स्थित जो सब विनायक हैं, वह अविमुक्तक्षेत्रकी रक्षा करते हैं, इसके उपरान्त मैं वह भी कहता हूं। गङ्गाके पश्चिम तीरमें अवस्थित "अर्कविनायक"के उत्तर अवस्थित लम्बोदर नामक गणपति विघ्नरूपी कीचड़को धो देते हैं, उनके पश्चिम उपसर्गके विनाशक कूटदन्त नामक गणेश सदा इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं, मनुष्य भीमचण्डविनायकसे कुछ दूरपर ईशानकोणमें अवस्थित "शालकटङ्कट" गणेशकी पूजा करेंगे। यह गणेश क्षेत्रस्थित राक्षसोंके अध्यक्ष हैं। देहलीविनायकके पूर्व्वभागमें अवस्थित कुष्माण्ड नामक विनायक, महोत्पात शान्तिके लिये भक्तोंके सदा पूजनीय हैं। उद्दण्डविनायकके अग्निकोणमें अवस्थित महाप्रसिद्ध मुण्डविनायक, भक्तोंके, पूजनीय हैं, मुण्डविनायककी देह पातालमें और मुण्ड काशीमें अवस्थित है, इसीलिये काशीमें उन देवकी मुण्डविनायक

संज्ञा है। पाशपाणि गणेशके दक्षिण अवस्थित "विकट द्विज" गणेशकी पूजा करनेसे गाणपत्यपदप्राप्ति होती है। "खर्व्व" विनायकके नैऋतकोणमें अवस्थित "राजपुत्र" विनायककी पूजा करनेसे, राज्यभ्रष्ट राजाको फिर राज्य मिलता है। गङ्गाके पश्चिम किनारे और राजपुत्र गणेशके पश्चिम अवस्थित "प्रणव" नामक गणेशको प्रणाम करनेसे, स्वर्ग मिलता है। काशीके द्वितीय आवरणमें अवस्थित यह अष्ट विनायक, काशीवासियोंका विघ्नसमूह उत्पादन करते हैं। काशीक्षेत्रमें, तृतीय आवरणमें, क्षेत्ररक्षक जो सब विघ्नराज हैं, मैं अब उनकी बात कहता हूं। उत्तरवाहिणी गङ्गाके रमणीय तीरमें लम्बोदर गणेशके उत्तर अवस्थित "वक्रतुण्ड" गणेश, पापसमूह विनाश करते हैं। कूटदन्त गणपतिके उत्तर एकदन्त गणेश, उपसर्गसम्बन्धसे सदा आनन्दकाननकी रक्षा करते हैं। शालकटङ्कट गणेशके ईशानकोणमें त्रिमुख नामक विघ्नराज, सदा काशीका भय दूर करते हैं। त्रिमुख गणेशके तीन मुख हैं,—एक मुख बन्दरके मुंहकी तरह, दूसरा मुख सिंहके मुंहकी तरह और तीसरा मुख हस्तिमुखकी तरह है; कुष्माण्ड गणेशके पूर्व्व पञ्चास्य नामक विघ्नराज वाराणसी नगरीकी रक्षा करते हैं। इन गणपतिके पञ्चास्ययुक्त उत्कृष्ट रथ हैं। मुण्डविनायकके अग्निकोणमें अवस्थित "हेरम्ब" गणेश सदा पूजनीय हैं। वह माताकी तरह सब काशीवासियोंकी कामना पूर्ण करते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति, विकटदन्तके पश्चिम अवस्थित "विघ्नराज" नामक सर्व्वविघ्नविनाशक गणपतिकी सिद्धिके लिये पूजा करेंगे। राजपुत्र गणेशसे कुछ दूरपर नैऋतकोणमें अवस्थित भक्तवरप्रद "वरद" नामक गणेशकी पूजा करना चाहिये। "प्रणव" गणेशके दक्षिण, गङ्गाके पवित्र तीरमें पिशङ्गिलातीर्थमें अवस्थित मोदकप्रिय गणेशकी पूजा करना चाहिये। काशीमें चतुर्थ आवरणमें अवस्थित, भक्तविघ्नविनाशक अष्ट विनायकका हृष्टचित्तसे सुव्यक्तरूपसे दर्शन करना विधि है। वक्रतुण्ड गणेशके उत्तर गङ्गतीरमें "अभयद" नामक गणपति हैं। वह सबका भय विनाश करते हैं! एकदन्त गणेशके उत्तर अवस्थित "सिंहतुण्ड" नामक गणेश, काशीवासियोंके उपसर्गस्वरूप करिकुलको विनष्ट करते हैं। त्रिमुख गणेशके ईशानकोणमें अवस्थित कूणिताक्ष नामक गणेश दुष्टगणकी कुदृष्टिसे महाश्मशान काशीको सदा रक्षा करते हैं। पञ्चास्यविनायकके पूर्व्व अवस्थित "क्षिप्रप्रसादन" गणपति नगरीको रक्षा करते हैं, क्षिप्रप्रसादनकी पूजा करनेसे शीघ्र ही सिद्धिसमूह मिलता है। हेरम्ब गणपतिके अग्निकोणमें साक्षात् चिन्तितप्रयोजनसम्पादक भक्तचिन्तामणि "चिन्तामणि" विनायक अवस्थित हैं। विघ्नराज-

विनायकके उत्तर "दन्तहस्त" गणेश अवस्थित हैं। वह काशीद्रोहियोंका बहुसहस्र विघ्न लिपिबद्ध करते हैं। वरद गणेशके नैऋतकोणमें अवस्थित राक्षसगणावृत पिचिण्डिल नामक गणपतिदेव दिन रात इस पुरीकी रक्षा करते हैं। पिलपिला तीर्थमें मोदकप्रिय गणपतिके दक्षिण "उद्दण्डमुण्ड" नामक गणपति भक्तोंको क्या नहीं प्रदान करते? काशीमें पञ्चम आवरणमें अवस्थित जो अष्टविनायक इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं, मैं अब उनकी बात कहता हूं। गङ्गातीरमें अभयप्रद गणेशके उत्तर अवस्थित स्थूलदन्त गणेश, सज्जनोंको स्थूलसिद्धि प्रदान करते हैं। सिंहतुण्ड गणेशके उत्तर अवस्थित "कलिप्रिय" विनायक, तीर्थवासिद्रोहकारियोंमें आपसमें कलह उत्पादन करते हैं। कूणिताक्ष गणेशके ईशानकोणमें चतुर्दन्त विनायक अवस्थित हैं; उनके दर्शनमात्रसे विघ्नसमूह स्वयं क्षय होता है। क्षिप्रप्रसादन गणेशके पूर्व अवस्थित "द्वितुण्ड" नामक गणपति, सामने और पीछे दोनो ही ओर समान शोभा धारण किये हैं। उन गणपतिके दर्शनमात्रसे सर्व्वतोमुखी श्रीप्राप्ति होती है। मेरे पुत्रसम्पदमें ज्येष्ठ "ज्येष्ठ" नामक गणपति हैं, ज्येष्ठमासकी शुक्लचतुर्दशीको ज्येष्ठत्व पानेके लिये यह पूजनीय हैं। ज्येष्ठगणेश, चिन्तामणि गणेशके अग्निकोणमें अवस्थित हैं। उनकी पूजा करनेसे बहु सम्पत्ति तो क्या, हाथी पर्य्यन्त मिलता है। पिचिण्डिल गणपतिके दक्षिण कालविनायक हैं; कालविनायककी सेवा करनेसे मनुष्यको कालभीति नहीं रहती। "उद्दण्डमुण्ड" गणपतिके दक्षिण अवस्थित नागेश गणपतिका दर्शन करनेसे नागलोक सादरवसतिप्राप्ति होती है। फिर षष्ठावरणस्थित विघ्नराजकी बात कहता हूं, उनका नाम सुननेसे ही सिद्धि मिलती है। विघ्नविनायक, "मणिकर्ण" नामक गणपति पूर्व्व ओर हैं; भक्तोंके आशापूरक आशाविनायक अग्निकोणमें हैं; सृष्टिसंहारसूचक सृष्टिगणेश दक्षिण ओर हैं; सर्व्वविघ्नहारी पूज्य "यक्षविघ्नेश्वर" नैऋतकोणमें हैं; सबके मङ्गलकारक गजकर्ण पश्चिम ओर और चित्रघण्टगणेश वायुकोणमें अवस्थित हो नगरीका पालन करते हैं, उत्तर ओर अवस्थित स्थूलजङ्घ गणपति, शान्तव्यक्तियोंका पाप दूर करते हैं। ईशानकोणमें अवस्थित मङ्गलविनायक शिवपुरीका पालन करते हैं। मनुष्य यमतीर्थके उत्तर, विघ्नविनायक गणेशकी पूजा करेंगे। अब सप्तमावरणस्थित गणपतिका कीर्त्तन करता हूं। मोदादि पञ्चगणेश, षष्ठ—ज्ञानविनायक हैं। सप्तम—द्वारविनायक हैं, यह गणेश महाद्वारके सामने अवस्थित हैं। अष्टम गणेश—अविमुक्तविनायक हैं। यह मेरे अविमुक्तक्षेत्रस्थित नम्रचेता मनुष्यगणका सर्व्वदुःखसमूह दूर

करते हैं। जो इन षट्पञ्चाशत् गजाननको स्मरण करेंगे, वह देशान्तरमें मरनेपर भी मृत्युकालमें ज्ञान पावेंगे। जो पुण्यात्मा, इन षट्पञ्चाशत् गजाननकथा-सम्वलित महापवित्र ढुंढिस्तुतिका पाठ करेंगे, उनको पदपदपर सिद्धि मिलेगी। मनुष्य इन गणपतिको जहां तहां स्मरण करेंगे, महाविपत्समुद्रमें पतनोन्मुख मानवकी भी यह रक्षा करते हैं। यह महापवित्र स्तव और सब विनायककी कथा सुननेसे कभी विघ्नबाधा नहीं होती और पापहानि होती है। अचिन्तौवेत्ता देवदेव, महोत्सवपूर्ण चित्तसे ऐसा कहकर ब्रह्मादि देवगणकृत अभिषेकप्राप्तिके उपरान्त, उन लोगोंको अभीष्ट प्रदान और यथायोग्य उन लोगोंसे बातचीतकर विश्वकर्मनिर्म्मित राजभवनमें प्रविष्ट हुए। स्कन्दने कहा, विघ्नराज, भगवान् देवादिदेव द्वारा इस तरह स्तुत हुए थे, पूर्व्वोक्त स्तवानुसार उन्होंने आत्माको छै प्रकारसे विभक्त किया था। हे कुम्भयोने! उन ढुंढिराजके यह सब नाम हैं; इनका कीर्त्तन करनेसे मनुष्य अपना अभीष्ट पाते हैं। इसके अतिरिक्त ढुंढिगणपतिकी और भी भक्तिपूजित असंख्य सहस्र प्रकारकी विभिन्न मूर्त्ति हैं। भगीरथ-गणेश, हरिश्चन्द्रगणेश, कपर्द्दिगणेश, विन्दुविनायक इत्यादि कितने ही गणेश हैं, एकएक भक्तप्रतिष्ठित;—काशीमें हैं! उनकी पूजासे भी मानवगणको सर्व्वसम्पत्ति मिलती है। मानव, श्रद्धाके साथ इस पवित्र अध्यायके सुननेपर सर्व्वविघ्नसे उत्तीर्ण हो अभीष्टपद पाते हैं।

सप्तपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाश अध्याय।

दिवोदासकी निर्व्वाणप्राप्ति।

अगस्त्यने कहा, हे स्कन्द! उस समय उन गणपतिके भी विलम्ब करनेपर, मन्दरगिरिस्थित शिवने क्या किया था? स्कन्दने कहा, हे अगस्त्य! एकमात्र काशीविषयिणी अशेषपापसमूह-विनाशिनी बात मैं अब कहता हूं, सुनो। उस क्षेत्रप्रधान अविमुक्तक्षेत्रमें गजेन्द्रवदनके विलम्ब करनेपर त्र्यम्बकने शीघ्र विष्णुको भेजा और उन्होंने समादरपूर्व्वक विष्णुसे कई बार कहा, कि पहलेके भेजे हुए व्यक्तियोंने जैसा किया है, तुम भी वैसा ही न करना। श्रीविष्णुने कहा, बुद्धि और बलाबल अनुसार उद्यम करना ही प्राणिगणका कर्त्तव्य है। परन्तु हे शङ्कर! कार्य्यकी सफलता तुम्हारे आयत्त है। कर्म्म सब चेतन हैं, प्राणिगण भी स्वाधीन नहीं हैं। तुम्हीं कर्म्मके साक्षी हो और तुम्हीं प्राणिगणके प्रवर्त्तक हो। परन्तु आपके चरणसेवकोंकी ऐसी सद्बुद्धि उत्पन्न होती है, जिससे आप होकी कहना

पड़ता है, कि "इस व्यक्तिने उत्तम कर्म्म किया है।" हे गिरिश! अल्पविस्तर जितने कर्म्म इस जगत्में हैं, तुम्हारे चरण-स्मरणपूर्व्वक अनुष्ठान करनेसे वह सब सिद्ध होंगे ही। उत्तम विचारपूर्व्वक अनुष्ठित सुसिद्धप्राय कर्म्म और तुम्हारा चरण स्मरण न करके अनुष्ठान करनेसे, तत्क्षणात् वह विनष्ट होता है। मैं आज शिवप्रेषित हो उत्तम उद्यम करता हूं; तुम्हारे प्रति भक्तिसम्पन्न हमलोगोंके उस उद्यमकी फलसिद्धि प्रायः हुई ही है। अपनी बुद्धि और बलपौरुषसे जो असाध्य है, हे शिव! तुम्हारे अनुध्यान मात्रसे वह कार्य्य सुसिद्ध होता है। हे विभो! भव! जो तुम्हारा प्रदक्षिणकर किसी कार्य्योद्देशसे जाते हैं, वह सब कर्म्मफल तुम्हारे भयसे ही मानो उनके सम्मुखवर्त्ती होते हैं। हे महादेव! यह सुनिश्चितरूपसे जानना, कि यह काम हो ही गया है। किन्तु इस समय काशी-प्रवेशका शुभलग्न स्थिर करो। अथवा काशीप्रवेशके लिये शुभाशुभ समय विचारनेका प्रयोजन नहीं है, जिस समय काशीमें प्रवेश किया जाय, वही शुभ समय है। फिर गरुड़ध्वजने शिवको प्रदक्षिण और बारबार प्रणामकर लक्ष्मीसहित मन्दर पर्व्वतसे काशीयात्रा की। फिर वाराणसीको देखकर विष्णुने आनन्दाधिक्यसे अपना "पुण्डरीकाक्ष" नाम सार्थक किया। विष्णुने गङ्गा-वरणाके सङ्गमस्थलमें निर्म्मलचित्त हो हाथपैर धोकर सवस्त्र स्नान किया। पीताम्बरके, पहले मङ्गलप्रद अपने चरणद्वय वहां धोनेकी अवधिसे वह तीर्थ "पादोदक" नामसे अभिहित हुआ। जो मनुष्य उस पादोदक तीर्थमें स्नान करेंगे, उनका सप्तजन्मार्ज्जित पाप शीघ्र विनष्ट होगा। मनुष्य उसके किनारे श्राद्ध और वहां तिल-तर्पण करनेसे उनके स्ववंशीय एकविंशति पुरुष उद्धार पाते हैं। गयामें पितृकार्य्य करनेसे पितृलोग जैसी तृप्ति पाते हैं, काशीके पादोदकतीर्थमें भी वैसी ही तृप्ति उन लोगोंके लिये निश्चय है। जिन मनुष्योंने पादोदकतीर्थमें स्नान, पादोदक तीर्थजलपान और पादोदक तीर्थजलदान किया है, उनसे और नरकसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यह निश्चय है, कि विष्णुपादोदक-तीर्थमें एकबार पादोदकपान करनेसे, उन्हें फिर कभी मातृस्तन्य पान करना नहीं पड़ता। शङ्खस्थित पादोदकजल तीर्थमें शालग्राम शिलाचक्रको स्नान करा वह जलपान करनेसे अमृतत्वप्राप्ति होती है। विष्णुपादोदक तीर्थमें यदि विष्णुपादोदक पान किया जाय, तो ऐसा होनेसे बहुकालके पुरातन अमृतमें और फल ही क्या है? जिन्होंने काशीमें पादोदकतीर्थमें उदक—कार्य्य नहीं किया है, उनका पानीके बुलबुलेकी तरह जन्म ही विफल है। लक्ष्मी और गरुड़सहित आदिकेशव विष्णुने नित्यकर्म्म समाप्तकर, त्रैलोक्यव्या-

पिनी अपनी मूर्त्ति उपसंहृतकर अपने हाथसे प्रस्तरमयी मूर्त्ति निर्म्माण की और सर्व्वसिद्धिसमृद्धिप्रदायिनी उस मूर्त्तिकी पूजा की। आदिकेशवनाम्नी उन परमेश्वरकी श्रीमूर्त्तिकी पूजा करनेसे मानव, वैकुण्ठको अपने गृहप्राङ्गणकी तरह समझ सकते हैं। काशीके सीमान्तमें वह स्थान श्वेतद्वीप नामसे विख्यात है। उन आदि केशवमूर्त्तिके सेवकगण, श्वेतद्वीपमें ही वास करें। वहां आदिकेशवके आगे क्षीरसमुद्र नामक दूसरा तीर्थ है, वहां उदकक्रिया करनेसे क्षीरसागरके किनारे वास होता है। मानवके वहां श्राद्ध करने और यथोक्ताभरणसे अलङ्कृता पयस्विनी गो दान करनेपर उनके पितृगण क्षीरोदतीरमें वास करते हैं। वहां भक्तिपूर्व्वक एक गोदान देनेसे, वह पुण्यात्मा स्ववंशीय एकशत एक पुरुषको पायसकर्द्दमयुक्त क्षीरोदतीरमें नीत करते हैं। इस तीर्थमें दक्षिणाके साथ बहुत उत्तम धेनु दान करनेसे, एक एक धेनुसे शताधिक वर्षतक उनके पितृगण क्षीरोदतीरमें वास करते हैं। क्षीरोदतीर्थके दक्षिण अनुत्तम शङ्खतीर्थ है। वहां पितृगणको अर्पित करनेसे वह विष्णुलोकमें सम्मानित होते हैं। उसके दक्षिण चक्रतीर्थ पितृगणके भी दुर्लभ है। वहां श्राद्ध करनेसे पितृऋणसे मुक्ति मिलती है। उसके पास गदातीर्थ सब मनःपीड़ाके नाशक पितृगणके निस्तारक और पापसमूहके क्षयकारक हैं। उसके पास पद्मतीर्थ है; नरश्रेष्ठ, वहां स्नान और विधिपूर्व्वक पितृतर्पण करनेसे कभी श्रीभ्रष्ट नहीं होते। त्रैलोक्यहर्षप्रदायिनी महालक्ष्मीने स्वयं वहां स्नान किया था, वह त्रैलोक्यविख्यात महालक्ष्मी-तीर्थ भी वहीं है। उस तीर्थमें स्नान और रत्नवस्त्र या पट्टवस्त्रसमूह ब्राह्मणोंको दान करनेपर लक्ष्मी अलग नहीं होतीं; जहां जहां उनका जन्म होता है, वहीं समृद्धिसम्पन्न होते हैं। तीर्थप्रभावसे उनके पितृगण श्रीसम्पन्न होते हैं। वहां त्रिलोकवन्दिता महालक्ष्मीमूर्त्ति हैं; मानव भक्तिके साथ उनको प्रणाम करनेसे कभी रोगी नहीं होते। उपवासनियमावलम्बनपूर्व्वक भाद्रमासकी कृष्णाष्टमीको महालक्ष्मीपूजा और रात्रिजागरण करनेसे व्रतफल मिलता है। वहां गरुड़केशवके समीप तार्क्ष्यतीर्थ है; भक्तिके साथ वहां स्नान करनेसे संसारसर्प देखना नहीं पड़ता। नारदने जहां केशवके पास ब्रह्मविद्या उपदेश पाया था, महापातकनाशन वह नारद तीर्थ उनके सामने है। मानव, वहां स्नान करनेपर सम्पूर्णरूपसे ब्रह्मविद्या पाते हैं। इसीलिये काशीमें वह केशव, नारदकेशव नामसे अभिहित हैं। भक्तिके साथ नारदकेशवदेवकी पूजा करनेसे, मानवको, फिर कभी जननीजठरपीठमें वास करना नहीं पड़ता। उनके आगे प्रह्लादतीर्थ है; वहां प्रह्लाद

केशव वर्त्तमान हैं। वहां श्राद्धादि करनेसे विष्णुलोकमें सादर वास होता है। उनके समीप पापविनाशक 'धान्वरीष' महातीर्थ है; वहां उदककार्य्य करनेसे मानव निष्पाप होते हैं। आदिकेशवके पूर्व्व अवस्थित आदित्यकेशवकी पूजा करना चाहिये। आदित्यकेशवके दर्शनमात्रसे ऊंची ऊंची पापराशिसे मुक्ति मिलती है। वहां ही दत्तात्रेयेश्वरतीर्थ और आदिगदाधर वर्त्तमान हैं। वहां पितृगणका तृप्तिसाधन करनेसे ज्ञानयोग मिलता है। भृगुकेशवके पूर्व्व परमतीर्थ भार्गवतीर्थ वर्त्तमान है, मनुष्य वहां स्नान करनेसे भार्गवकी तरह सुबुद्धि और प्राज्ञ हो सकते हैं, वहां वामनकेशवके पूर्व्व वामनतीर्थ है; वहां उन विष्णुकी पूजा करनेसे मानव, वामनके पास वास करते हैं। नरनारायणके सामने नरनारायण तीर्थ है; उस तीर्थमें स्नान करनेसे मानव नारायणत्व पाते हैं। उनके समीप पापविनाशक यज्ञवाराह तीर्थ है; प्रतिमज्जनसे वहां राजसूययज्ञका फल होता है। उनके समीप "विदारनारसिंह" नामक, सुनिर्म्मल तीर्थ है; वहां स्नान कर नेसे शतजन्मार्ज्जित पाप विदीर्ण होता है। गोपीगोविन्दमूर्त्तिके पूर्व्व गोपीगोविन्द तीर्थ है; वहां स्नानकर जो विष्णुकी पूजा करते हैं, वह विष्णुप्रिय होते हैं। गोपीगोविन्दके दक्षिण लक्ष्मीनृसिंह नामक तीर्थ है, उस तीर्थमें स्नान करनेसे लक्ष्मी त्याग नहीं करतीं। उसके आगे शेषमाधवके समीप शेषतीर्थ है; वहां पितृगणके तर्पित होनेसे, उनकी तृप्तिका फिर शेष नहीं होता। उनके पश्चिम शङ्खमाधव नामक सुनिर्म्मल तीर्थ है; पापिष्ठ मानव भी वहां स्नान तर्पण उदककार्य्य करनेसे निर्म्मलता पाते हैं। उनके आगे परमपावन हयग्रीव तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान, हयग्रीवरूपी केशवकी पूजा और हयग्रीवके पास पिण्डदान करनेसे, हयग्रीव श्री-प्राप्त हो पूर्व्वपुरुषोंके साथ उनकी मुक्ति होती है। स्कन्दने कहा, प्रसङ्गक्रमके उद्देशसे मैंने इन सब तीर्थोंका कीर्त्तन किया। इसलिये, कि काशीमें तिलतिलान्तर भूमिमें ही अनेकानेक तीर्थ हैं। हे कुम्भयोने! कहे हुए इन तीर्थोंका नाममात्र सुननेसे मानव निष्पाप होते हैं। हे विप्र! शङ्खचक्रगदाधर बैकुण्ठनाथने जो किया था, वह प्रस्तुत विषय अब तुमसे कहता हूं। फिर केशव, उस केशवमूर्त्तिमें समाविष्ट हुए, फिर शिवकार्य्य करनेमें कृतनिश्चय हो अंशांशके अंशमें चतुर्भुजरूपसे निर्गत हुए। अगस्त्यने कहा, प्रभो षड़ानन! चक्रपाणि, अंशांशके अंशमें क्यों निर्गत हुए? काशीमें उपस्थित हो हरि, कहां उस रूपमें निकले थे? स्कन्दने कहा, हे मुने! विष्णु समग्ररूपसे जिस कारण वहां नहीं निकले, वह कारण कहता

हूं। क्षणकाल मात्र सुनो। पुण्यपुञ्जबलसे काशीमें उपस्थित प्राज्ञ व्यक्ति, महामहा लाभके स्वयं आ स्तव करनेपर भी सर्व्वतोभावसे उसे परित्याग न करेंगी। हे कुम्भयोने! इसीलिये मुरारिने काशीमें अपनी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की और वह अल्यांशसे निर्गत हुए। देव चक्रपाणिने काशीके कुछ उत्तर जा अपनी स्थितिके लिये स्थानकी कल्पना की; वह स्थान धर्म्मक्षेत्रके नामसे विख्यात है। फिर स्वयं श्रीपतिने त्रैलोक्यमोहन अतीव सुन्दर बौद्धरूप ग्रहण किया। लक्ष्मी अति सुन्दराकृति परिव्राजिका हुईं; हस्ताग्र-पुस्तक-विन्यस्त इन परिव्राजिकारूपिणी विश्वमाता जगद्धात्रीको देख समग्र जगत् चित्रन्यस्तवत् अवस्थित हुआ था। गरुड़ भी लोकातीत आकृतिसमान्न, अत्यद्भुत महाप्राज्ञ, सर्व्ववस्तुनिस्पृह, गुरुशुश्रुषारत और हाथमें विन्यस्त-पुस्तक ले उनके शिष्यरूपी हुए। प्रसन्नवदन, प्रसन्नात्मा, धर्म्मार्थशास्त्र-विचक्षण, ज्ञानविज्ञानसम्पन्न सुस्वर शोभनपदयुक्त सुस्निग्ध कोमल-वचनभाषी, स्तम्भन उच्चाटन आकर्षण और वशीकरणादि कार्य्यमें पण्डित, धर्म्मव्याख्याके समय वक्तृताकृष्ट पक्षिकुलके भी रोमाञ्च-सम्पादनकुशल, अपने गीतसुधापायी मृगगण कर्त्तृक उपासित, महानन्दभारके आक्रमणहेतु मानो पवनके भी चाञ्चल्य-हरणमें कृति, तत्कुसुमावलीच्छलसे मानो वृक्षगण द्वारा भी पूजित उन आचार्य्य-प्रधानके शिष्यने उनसे संसारमोचक परम-धर्म्म पूछा; पुण्यकीर्त्ति नामक पुण्यात्मा बौद्धने, विनयकीर्त्ति नामक महाविनयभूषण शिष्यसे कहा, हे विनयकीर्त्ते! तुमने जो सनातनधर्म्मकी बात मुझसे पूछी, हे महामते! मैं अशेष प्रकारसे उसे कहता हूं, तुम सुनो। संसार अर्थात् जगत् अनादिसिद्ध है; संसारका कोई कर्त्ता नहीं है और संसार किसीका भी कृतिसाध्य नहीं है। संसारका प्रादुर्भाव भी आप ही आप और विलय भी आप ही आप है। ब्रह्मासे तृणगुच्छपर्य्यन्त स्थूलसूक्ष्म-देहद्वयघटित यह जगत् है। एक आत्मा ही इसका ईश्वर है। आत्माका नियन्ता कोई नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र प्रभृति प्राणिगणकी ही संज्ञा है; अस्मदादिकी संज्ञा जैसे पुण्यकीर्त्ति प्रभृति कही जाती है। जैसे अस्मदादिकी देह यथा-काल विनष्ट होती है, ब्रह्मादि मशकान्त सब प्राणीकी देह भी उसी तरह यथा-कालमें विनष्ट होती है। इस देहके सम्बन्धमें विचारकर देखलेनेसे, कहीं कुछ भी अधिक पाया नहीं जाता। आहार, निद्रा, भय, मैथुन यह जो सब प्राणियोंमें समान है, वह इस देहमें है। अपने अपने अनुरूप आहार पानेसे सब प्राणी ही ऐसी प्रसन्नता पाते हैं; किसीको न्यून या किसीको अधिक प्रीति नहीं होती। मैं

तृष्णार्त्त होनेपर जैसे आनन्दसे पानी पीकर तृष्णाहीन होता हूं, दूसरे भी उसी तरह होते हैं। अल्प या अधिक किसी तरहसे भी पार्थक्य नहीं हैं। रूपलावण्यवती सहस्र सहस्र रमणी हों, किन्तु मैथुनके समय एक रमणी ही प्रयोजनीया है। असाधिक अश्व हों, कितने ही हस्ती हों, किन्तु आरोहणके समय एक ही अपने उपयोगी है, दूसरा नहीं। पर्य्यङ्कशायिगणकी निद्रामें जैसा सुख मिलता है, इसजगत्‌में भूमिशायी व्यक्तिगणकी निद्रामें भी वैसा ही सुख है। अजरादि शरीरिगणको जैसा मृत्युभय है, ब्रह्मासे क्षुद्रकीट पर्य्यन्त सबको वैसी ही मृत्युभय है। सब प्राणी ही समान हैं, बुद्धि द्वारा विचारकर ऐसा स्थिर करनेपर किसी प्राणीको भी कोई कहीं मार नहीं सकता। जीवमें दयाके समान धर्म्म जगन्मण्डलमें कहीं भी नहीं है; अतएव मानवगण सब प्रकारके प्रयत्नसे जीवपर दया करेंगे। एक जीवकी रक्षा करनेसे, त्रैलोक्य रक्षाका फल होता है; उसी तरह एक प्राणीको बध करनेसे त्रैलोक्यबधका पाप होता है। अतएव प्राणिरक्षा ही करें प्राणिबध न करेंगे। पहलेके पण्डितोंने ऐसे प्रसङ्गमें प्राणीकी अहिंसाको ही परम धर्म्म कहा है। अतएव नरकभीरु मानव हिंसा न करेंगे; सचराचर त्रैलोक्यमें हिंसाके समान पाप नहीं है। हिंसक नरकमें जाते और अहिंसक स्वर्गमें जाते हैं। अनेक प्रकारका दानधर्म्म है, तुच्छफलप्रद उन सब दान धर्म्मसे प्रयोजन क्या है। परन्तु अभयदानके समान दूसरा कोई दान इस जगत्‌में नहीं है। नानाशास्त्रसे विचारकर परमर्षिगणने कहा है, कि इस इगत्‌में मात्र चार दान, इहपरकालके सुखजनक हैं। भीत व्यक्तियोंको अभयदान करेंगे, पीड़ितोंको औषध देंगे, विद्यार्थियोंको विद्या देंगे और क्षुधातुरको अन्न देंगे। मणि, मन्त्र और औषधिका प्रभाव, चिन्ताके भी अगोचर है; नानाअर्थ उपार्ज्जनके लिये यत्नके साथ वह सब दिया देंगे। बहुत अर्थ उपार्ज्जनकर सर्व्वतोभावसे पूजनीय द्वादश आयतनकी पूजा करना विधि है। दूसरेकी पूजासे फल क्या है? पञ्चकर्म्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि, यही जगत्‌में शुभ द्वादश आयतन कहे जाते हैं। प्राणिगणका स्वर्ग नरक इहलोकमें ही है, और कहीं नहीं। सुखका नाम स्वर्ग और दुःखका नाम नरक है। सुख भोग करते करते जो देह त्याग दे, वही परम मोक्ष है; दूसरा मोक्ष और कहीं नहीं है। वासनासहित क्लेशका उच्छेद होनेपर जो विज्ञानोपरम हो, उसको ही तत्वचिन्तक मोक्ष समझें। वेदवादिगण ऐसी प्रामाणिक श्रुति कहते हैं, कि "किसी प्राणीकी हिंसा न करेंगे"; "अग्निषोमीय पशुबध इष्टसाधन है" इस अर्थसे जो हिंसाप्रवर्त्तिनी श्रुति है, वह

प्रमाणोंकी नहीं। वह संसारमें असज्जनगणकी भ्रमजनिका है। वह पशुवधसूचिका श्रुति अभिज्ञगणके पक्षमें प्रमाण नहीं है। कैसा आश्चर्य है! वृक्षच्छेदन, पशुहत्या, शोणितकर्द्दम और अग्निमें घृततिलदाह यही सब करके लोग स्वर्गका अभिलाष किया करते हैं! इसतरह पुण्यकीर्त्ति धर्म्मव्याख्या करती रहे, पौरगणको वह धारावाहिक सुनते सुनते "यात्रा" करना पड़ती। इधर सर्व्व विद्याविचक्षणा परिव्राजिका विज्ञानकौमुदी भी पुरनारीगणको इसी तरह आकर्षण करने लगीं। इसके उपरान्त, परिव्राजिका, उनलोगोंके सामने, प्रत्यक्षफल विश्वासी एकमात्र देहसौख्यसाधक बौद्धधर्म्म बार बार कहने लगी; आनन्दस्वरूप ब्रह्मश्रुतिमें जो कहा है, वही ठीक जानेंगी; नानात्वकल्पना मिथ्यामात्र है। जितने दिन यह देह सुस्थ है, जबतक इन्द्रियशैथल्य नहीं हुआ है, जबतक जरा पास न आवे; तबतक जिसमें सुख हो वही करेंगी। अस्वास्थ्य और इन्द्रियशैथल्यकर वार्द्धक्य अवस्थामें सुख नहीं है। अतएव सुखाभिलाषी व्यक्ति याचकव्यक्तिको शरीर भी दान करेंगी। याचमानव्यक्तिकी मनोवृत्ति परिपूर्ण करनेमें जिनका जन्म नहीं है, वही भूमण्डलके भारभूत हैं, समुद्र, पर्व्वत, वृक्ष भूभार नहीं हैं। देह शीघ्रगमनशील, सञ्चय भी क्षयवहिर्भूत नहीं है। अभिज्ञ व्यक्ति, यह जानकर शारीरिक सुखसम्पादन करेंगी। अन्तमें यह देह, काक, कुक्कुर और कृमि प्रभृतिका भोज्य है, अथवा इस शरीरका परिणाम होता है—भस्म। देहकी यह बात सचाई है लोगोंमें यह जो जातिभेद कल्पित हुआ है, वह अलीक मात्र है। मनुष्यत्व साधारण धर्म्म है, इन दोनोमें अधम क्या और उत्तम क्या है? वृद्धपुरुषगण कहते हैं, ब्रह्मासे इस सृष्टिका आरम्भ है। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माके दक्ष और मरीचि नामक दो विख्यात पुत्र हैं। मरीचिके पुत्र कश्यपने सुनयना त्रयोदश दक्षनन्दिनीसे धर्म्मपथसे बिवाह किया था। अथच अल्पबुद्धि अल्पविक्रम इदानीन्तन मनुष्यगण, "यह गम्य" "यह अगम्य" ऐसा व्यर्थ विचार करते हैं। संसारमें कहती हैं, मुख, बाहु, उरु और पदसे चतुर्व्वर्णकी उत्पत्ति है। पूर्व्वतन मानवगणने ऐसी कल्पना की है। बिचार करनेसे यह असङ्गत ही जान पड़ता है। यदि एक व्यक्तिको एक देहसे चार पुत्र होंगी, तो उनका विभिन्नरूप क्यों हुआ? अतएव यह वर्णावर्ण विचार सङ्गत नहीं। सुतरां मनुष्योंके बीच कोई कभी भेदज्ञान न करेंगी। पुरनारीगणने विज्ञानकौमुदीकी ऐसी बातें सुन उत्तमा भर्त्तृशुश्रूषणबुद्धि परित्याग की। मोक्षप्राप्त पुरुष आकर्षणीविद्या और वशीकरण विद्या सीखकर परस्पर उसका साफल्य सम्पादन करने

लगी। अन्तःपुरचारिणी, रमणी, राजकुमार पौर और पुरनारी सबको ही उन दोने मोहित किया। परिव्राजिका विज्ञानकौमुदी, कर्म्मविशेष द्वारा बन्ध्यादिका बन्ध्यात्व दूर करने लगीं। दुर्भाग्यशालिनी रमणियोंको अपने उपाय द्वारा सौभाग्यशालिनी करने लगीं। उन्होंने किसी रमणीको अञ्जन दिया, किसीको तिलक औषध प्रदान किया। अनेक रमणियोंको वशीकरण मन्त्र सिखा दिया। कितनी ही रमणी मन्त्रजपमें नियुक्त हुईं, कोई कोई यन्त्र लिखने लगीं, कोई कोई स्थिरभावसे, कुण्डस्थित अनलमें, नाना द्रव्य होम करने लगीं। इसतरह सब पुरवासीगण सर्व्वतोभावसे निजधर्म्मसे पराङ्मुख हुए, अधर्म्म अत्यन्त उल्लासयुक्त हुआ। बिना कर्षणसे शस्य उत्पत्ति प्रभृति जितनी सिद्धि थी, पापके प्रवेशसे वह सब नष्ट हुईं; राजा दिवोदासका सामर्थ्य भी धीरे धीरे कुण्ठित होने लगी। विघ्नेश्वर ढुंढिराजने दूर रहकर भी रिपुञ्जय राजाको, राज्य पालनमें निर्व्विषचित्त किया। दिवोदास निर्द्दिष्ट सीमा अष्टादश दिन गिनते हुए सोचने लगे, कि वह ब्राह्मण कब आवेंगे, कब मुझे उपदेश देंगे?—इसतरह सप्तदश दिन बीता और अष्टादश दिन उपस्थित हुआ; दिवाकरके बीच आकाशमें चढ़नेपर एक द्विजोत्तम द्वारपर उपस्थित हुए। पुण्यकीर्त्ति नामधारी वह विष्णु ही द्विजवेश अवलम्बनकर धर्म्मचोवसे राजाके पास आये थे। "जय" "जीव" इत्यादि कहते हुए कितने ही पवित्र द्विजगणके साथ वह ब्राह्मण, मूर्त्तिमान अनलकी तरह वहां समागत हुए। उत्कण्ठायुक्त राजा, दूर हीसे उन्हें आते देख मन ही मन कहने लगे, यह ब्राह्मण ही मुझे उपदेश प्रदान करनेपर उत्पन्न गुण होंगे। तब राजा उनके पास आ और बारबार प्रणामकर, आशीर्व्वाद ग्रहणपूर्व्वक द्विजको अन्तःपुरमें ले गये। जनाधिप दिवोदासने मधुपर्क विधि अनुसार उनको पूजा की। फिर अपगतपरिश्रम, उल्लसितमुखकमल, अनुष्ठितक्रिया कलाप उन ब्राह्मणको खाद्य वस्तु दे, फिर भोजन परितृप्त सुखासीन उन द्विजसे राजाने पूछा, हे विप्रवर्य! मैं राज्यभार वहन करते हुए खिन्न हुआ हूं; प्रकृत खेद भी नहीं है, परन्तु मानो वैराग्य उत्पन्न हो रहा है। हे द्विज! मैं क्या करूं, कहां जाऊं, मेरी निवृति कैसे होगी? मुझे ऐसा विचार करते करते दो पक्ष बीत गया। हे द्विज! महादेवके ऐश्वर्य्यकी तरह सुव्यक्त असीम सुखसमूह सम्पादक निष्कण्टक राज्यभोग मैंने किया है। मैं आत्मसामर्थ्यमें मेघ, अग्नि और वायु स्वरूपी हुआ हूं। और मैंने प्रजागणका औरसपुत्रकी तरह सम्यकप्रकारसे पालन किया है। मैंने प्रतिदिन धन द्वारा ब्राह्मणगणका तृप्तिसाधन किया है। मैंने

राज्यशासन करनेके समय केवल एक अपराध किया है, मैंने अपने तपोबलसे देवगणको तृणज्ञान किया है। आपकी शपथ करता हूं, वह भी किन्तु प्रजागणके उपकारके लिये, स्वार्थके लिये नहीं। अब मेरे भाग्योदयसे आप आये हैं, तो मेरे गुरु बनिये। मैं इस तरह राज्य करता हूं, कि मेरे राज्यमें यमका भय नहीं है कहीं अकालमृत्यु नहीं है, जरा व्याधि और दारिद्र्यसे मेरे राज्यमें भय नहीं है। मेरे शासनकालमें, किसीने अधर्म्मप्रवृत्ति अवलम्बन नहीं की, सभी धर्म्मोन्नत और सभी सुखोन्नत हैं। सभी सत्‌विद्याचर्चामें अनुरक्त और सभी सत्‌पथचारी हैं। अथवा मेरी आयु यदि कल्पान्तपर्य्यन्त स्थायी हो, तब भी उससे क्या फल है! सब भोग्यभोग ही चर्व्वितचर्व्वणवत् दिखाई देता है। हे द्विजपुङ्गव! इस पिष्टपोषणतुल्य राज्यभोगसे फल ही क्या है? हे प्राज्ञ! कोई ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे फिर गर्भवास न हो। अथवा मैं आपका आश्रित हुआ हूं, मुझे यह सब चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं। आप जो कहेंगे, मैं निःसन्देह आज ही उसे करूंगा। आपके दर्शनमात्रसे ही मेरा सब मनोरथ सिद्धप्राप्त हुआ है, दूसरोंका भी सिद्ध होगा। मैं जानता हूं, देवताके साथ विरोधकर कितने ही लोग पर्य्यदस्त हुए हैं। अगले समय निज प्रजापालक, स्वधर्म्मानुरक्त, और त्रिपुरवासी असुरगणके शिवभक्तिपरायण होनेपर भी शिवने अवलीलाक्रमसे एक बाणपातसे उन लोगोंको भस्मसात् किया था। तब शिवने पृथिवीको रथ, चतुर्व्वेदको चारो अश्व, चन्द्र-सूर्य्यको रथचक्रद्वय, प्रणवको प्रतोद (चाबुक), ताराग्रह समूहको रथअङ्ग, आकाशको रथगुप्ति, सुमेरुको ध्वजदण्ड, ऊंचे कल्पवृक्षको ध्वजा, प्रधान प्रधान सर्पोंको योक्त्र, सब वेदाङ्ग छन्दःको रक्षक, ब्रह्माको सारथि, हिमालयको धनु, वासुकिको धनुर्ज्या, कालाग्निरुद्रको भल्ल, विष्णुको बाण और वायुको शरपुङ्ख बनाया था। पहले हरिने कपट-वामनता अवलम्बनकर त्रिविक्रम द्वारा बहुक्रतुप्रवर बलिको पाताल भेज दिया। वृत्र सच्चरित्र होनेपर भी इन्द्र द्वारा निहत हुए थे। विष्णु जयार्थी हो दधीचिके साथ युद्धकर, दधीचिसे कुशास्त्र द्वारा रणस्थलमें पराजित हुए; वह पहलेका वैर स्मरणकर देवगणने अस्थिके लिये दधीचिको विनष्ट किया। अगले समय शिवभक्त बाणराजाके सहस्र बाहु युद्धस्थलमें छेदन किया। किन्तु उन सच्चरित्र बाणका अपराध क्या था? अतएव देवगणके साथ विरोध मङ्गलकर नहीं है। तब भी मैं सत्‌पथपर हूं, देवगणसे मुझे कुछ भी भय नहीं है। इन्द्रादि देवगणने यज्ञप्रभावसे देवत्व पाया है। यज्ञ, दान

और तपस्या द्वारा देवगणकी अपेक्षा मेरा आधिक्य है। मुझे न्यूनता हो या आधिक्य ही हो, इस समय उससे मेरा क्या है? आपके दर्शनसे इस समय मैंने सुखदायक इन्द्रियशान्ति पाई है। हे तात! हे उपायज्ञ! जिससे मैं निर्वृति पा सकूं, कर्मनिर्मूलनक्षम उस उपायका उपदेश करिये। स्कन्दने कहा, गणेशके आदेशक्रमसे राजाने जो कहा, उसे सुनकर ब्राह्मणवेशधारी हृषीकेश कहने लगे, हे महाप्राज्ञ! निष्पाप! नृपचूडामणे! मैं जो उपदेश करूंगा, वह तुमने आप ही निरूपण किया है। तुम पहले हीसे निर्वृति पा चुके हो, परन्तु इस समय मुझसे उपाय पूछकर मेरी मानवृद्धि करते हो। तुमने शोभन तपस्यारूप स्वच्छसलिलसे इन्द्रियपङ्क धो डाला है। हे राजन्! तुमने जो कुछ कहा, वह सच है। हे महामते! तुम्हारी भक्ति और वैराग्यसे मैं अवगत हूं। तुम्हारे ऐसा राजा हुआ न होगा। जिसतरह राज्य भोग करना होता है, वह तुम जानते हो; इस समय जो मुक्तिकी इच्छा करते हो, वह अति युक्तियुक्त है। देवताओंके साथ विरोध रहनेपर भी तुमने किसीका कुछ अपकार नहीं किया है। तुम्हारे राज्यमें भी अधर्मका प्रवेश नहीं हुआ है। हे स्वधर्मज्ञ! तुम्हारे द्वारा धर्ममें प्रवर्त्तित प्रजागणने जो धर्म आचरण किया है, उससे देवगण परितृप्त हैं। तुमने जो काशीसे विश्वेश्वरको दूर किया है, मेरे हृदयमें यही एक तुम्हारा दोष दिखाई देता है। हे राजसत्तम! मैं यही तुम्हारा महापराध समझता हूं। उस पापशान्तिके लिये मैं महत्तर यह उपाय कहता हूं। मनुष्यकी देहमें जितने रोम हैं, यदि उतने संख्यक पाप हों, तो वह भी मात्र शिवलिङ्गप्रतिष्ठासे दूर होता है। जिस व्यक्तिने शिवके प्रति भक्तियुक्त हो एक लिङ्ग प्रतिष्ठित किया है, उसने आत्माके साथ जगत्‌को प्रतिष्ठित किया। संख्यावेत्तृगण वरं समुद्रकी रत्नसंख्या कर सकते हैं, तब भी लिङ्गप्रतिष्ठापुण्यकी संख्या कर नहीं सकते। अतएव सर्व्वतोभावसे यत्नसे लिङ्गप्रतिष्ठा करो। उसी लिङ्गप्रतिष्ठा द्वारा तुम कृतार्थ होगे। यह कहकर ब्राह्मणने स्थिरचित्त हो क्षणकाल ध्यान किया। फिर करतल द्वारा राजाको स्पर्शकर हृष्टमुखसे कहा, हे प्राज्ञसत्तम! भूपाल! मैं ज्ञाननेत्र द्वारा और भी कुछ देखता हूं, अवधानके साथ वह भी सुनो। तुम धन्य हुए हो, कृतार्थ हुए हो, महा व्यक्तिगणके भी मान्य हुए हो; शुभफलार्थिगण, प्रातःकाल तुम्हारा नाम जपेंगे। हे दिवोदास! हम तुम्हारा समीप्य लाभकर धन्यतर हुए। जो तुम्हारा नाम कीर्त्तन करते हैं, वह मानव भी धन्य हैं। ब्राह्मणने बारबार ईषत् हास्यकर, सहर्ष

रोमाञ्चितशरीरसे बारबार मस्तक आन्दोलनकर मन ही मन अनेक बातें कहीं अहा ! इस राजाका कैसा भाग्य है ! कैसी निश्चलता है। निखिल जनगणके ध्येय विश्वेश्वर इनके विषयमें विचार किया करते हैं। इन राजाका कैसे अ श्चर्यका परिणाम है। ऐसा परिणाम किसीका नहीं होता। जो फल हमारे लिये दूरवर्त्ती है, इन राजाको वह भी अदूर है। ब्राह्मणने हृदयमें ऐसी आलोचना कर,राजाका वर्णनकर, समाधिदृष्ट सब विषय उनसे प्रकाश किये। ब्राह्मणने कहा, हे राजन्! तुम्हारा मनोरथमहावृक्ष आज फलवान् हुआ है। तुम इस काशीमें ही परमपद पाओगे। विश्वेश्वर तुम्हारे विषय जैसा मनमें सोचते हैं, अपने चरणसेवक अस्मदादि विप्रगणको भी वैसा याद नहीं करते। तुम्हारे लिङ्गप्रतिष्ठा करनेपर, आजसे सात दिनमें दिव्य विमानपर आरूढ़ हो शिवकिङ्करगण तुम्हें लेने आवेंगे। राजन्! यह तुम्हारे किस पुण्यका फल है, यह तुम जानते हो? मैं जानता हूं; सम्यकरूपसे वाराणसी नगरीकी सेवाका ही यह फल है। जो व्यक्ति काशीस्थित एक मनुष्यके भी पालक होते हैं, हे राजसत्तम! देहान्तमें वह भी ऐसा ही पुण्य भोगते हैं। यह सुनकर प्रतापवान् राजर्षि दिवोदासने सशिष्य ब्राह्मणको प्रीतिके साथ अभिलषित वस्तु दान किया। फिर प्रीणित ब्राह्मणको बारबार प्रणामकर हृष्टचित्तसे राजा कहने लगे, मुझे आपने भवसमुद्रसे पार किया। परिपूर्णमनोरथ हृष्टचित्त ब्राह्मण भी महीपतिसे विदा ले अपने अभिलषित स्थान आये। मायाक्रमसे ब्राह्मणशरीरधारी हरि, काशीकी चारो ओर देख, बारबार विचार करने लगे, "मैं जहां रहकर निज भक्तवृन्दको, विश्वेश्वरके परमानुग्रहसे अन्तमें परमस्थान ले जाऊंगा,ऐसा अतीव पावनस्थान कौन है?" ऐसा स्थिरकर भगवान् श्रीपति पाञ्चनद ह्रद देखकर वहां विधिपूर्व्वक स्नानकर शीघ्र त्र्यम्बकसमागमकी प्रतीक्षामें वहीं रहने लगे। इसके उपरान्त राजवृत्तान्ताभिज्ञ गरुड़को शिवके पास भेजा। राजेन्द्र दिवोदासने भी विप्रश्रेष्ठका गुण वर्णनकर सब प्रकृतिपुञ्ज, अमात्यवृन्द, मण्डलेश्वरसमूह, कोष, अश्व और हस्ती प्रभृतिके समग्र अध्यक्ष पञ्चशत पुत्र, ज्येष्ठपुत्र समरञ्जय,पुरोहित, प्रतीहारी, ऋत्विक्वृन्द, गणकसमूह, द्विजगण, प्रिय राजकुमारगण, सूपकारगण चिकित्सकगण, नाना कार्य्यके लिये आये हुए वैदेशिकवृन्द, अन्तःपुरचारिणीगण, समभिव्याहारिणी महिषी, वृद्ध, बालक और गोपालगण सबको बुलाकर ब्राह्मणोक्त सप्ताह मात्र अपने राज्यके अस्तित्वको करत हाथ जोड़कर हृष्टचित्तसे कही। वह आश्चर्य्य व्यापार आये हुए व्यक्तिगण सुनते थे और सुनकर उनका मुख विषस

होता था। इसी अवसरमें पुण्यात्मा राजा स्वयं राजगृहमें प्रविष्ट हो पुत्र समरञ्जयको अभिषिक्तकर अन्तमें पौरजानपदगणको प्रसन्नकर फिर काशीमें आये। उन मेधावी राजा रिपुञ्जयने काशीमें आकर गङ्गाके पश्चिम किनारे एक प्रासाद निर्म्माण कराया। राजाने शत्रुगणको समरमें पराजितकर जितनी सम्पत्ति उपार्ज्जन की थी, उन सब सम्पत्ति द्वारा शिवालय बनवाया। समग्र राजसम्पत्ति वहां व्ययित होनेकी वजह वह शुभस्थान "भूपालश्री" नामसे विख्यात है! नरनाथ रिपुञ्जयने "दिवोदासेश्वर" नामक लिङ्ग प्रतिष्ठाकर अपनेको कृतार्थ समझा। फिर एकदिन राजाने उन लिङ्गकी विधिपूर्व्वक पूजा और प्रणामकर जिस समय स्तव पाठ किया, उसी समय गगनप्राङ्गणसे द्रुतवेगसे एक दिव्ययान उतरा। शूलखट्वाङ्गधारी, सूर्य्य-तेज और अग्नितेजको अपेक्षा अधिक तेजः-सम्पन्न, त्रिलोचन, जटाजूटधारी, निर्म्मल-स्फटिकवत् शुभ्रकान्ति, गगनप्राङ्गणके औज्ज्वल्य सम्पादक अङ्गसमन्वित, सर्प-अलङ्कारके फणास्थित रत्नज्योतिर्निचयसे सुशोभित-देह, नीलकण्ठ शिवपारिषद्गण, विमानके ऊपर चारो ओर विराजमान थे। तमोराशि,नित्यप्रकाशसे सम्भ्रान्त होकर हो मानो उन शिवपारिषद्गणके कण्ठदेशका आश्रय ग्रहण किया था। चामरान्दोलन-परायणा शत शत रुद्रकन्या विमानको घेरे हुई थीं। फिर शिवपारिषद्गणने, आनन्दयुक्त हो, दिव्यमाल्य, दिव्य अनुलेपन दिव्यवस्त्र और दिव्यवेशभूषासे राजाको अलङ्कृत किया। उन्होंने दिवोदासके उत्तम ललाटको त्रितीयनेत्रयुक्त किया। उनका कण्ठ नीलीमय किया, सर्व्वाङ्ग अति-गौरवर्ण किया। मस्तकके केशको जटाजूट बनाया, उनकी देहमें भुज-चतुष्टयका समावेश किया। सर्पसमूहको अलङ्कार बनाया और मस्तकमें अर्द्धचन्द्र दिया। इसके उपरान्त पारिषद् लोग उन्हें स्वर्ग ले गये। उस अवधिसे वह तीर्थ "भूपालश्री" नामसे विख्यात हुआ है। वहां श्राद्धादि अनुष्ठान, यथा-शक्ति दान दिवोदासेश्वरका दर्शन, भक्ति-पूर्व्वक उनकी पूजा और राजा दिवोदासकी आख्यायिका सुननेसे, मनुष्यको फिर गर्भमें प्रविष्ट होना नहीं पड़ता। दिवोदास राजाका यह पवित्र आख्यान पाठ या पाठन करानेसे मनुष्य पापमुक्त होते हैं। दिवोदासका पवित्र आख्यान सुनकर जो व्यक्ति समरमें प्रविष्ट होते हैं, उन्हें कभी कहीं शत्रुकृत भय नहीं रहता। महोत्पात विनाशिनी पवित्रा इन दिवोदासकी कथा, सर्व्वविघ्नशान्तिके लिये यत्नके साथ पाठनीय है। जहां सर्व्वपातकनाशिनी दिवोदासकी कथा होती है, वहां अनावृष्टि नहीं होती, अकालमृत्युका भय भी नहीं रहता। शिवध्यानसम्पादक इस आख्या-

नकी पढ़नेसे विष्णुकी तरह मनोरथ पूर्ण होता है ।

अष्टपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितम अध्याय ।

पञ्चनदाविर्भाव ।

अगस्त्यने कहा, हे सर्व्वज्ञके हृदयानन्दन नन्दन ! हे गौरीचुम्बितशीर्ष, तारकान्तक, षडानन ! हे सर्व्वज्ञानिधे ! आप ही सर्व्वतोभावसे जितमार महात्मा कुमार हैं ; आपको नमस्कार है । आपने कुमार होनेपर भी कामारिकी कामकृत अर्द्धनारीश्वरमूर्त्ति देख कन्दर्पको जय किया था, आपको नमस्कार है । हे स्कन्द ! आपने कहा, कि काशीस्थ अति पवित्र पाञ्चनदतीर्थमें स्वयं हरिने मायाबलसे द्विजमूर्त्ति धारणकर वास किया था और भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके भीतर काशी परम पवित्र है ; उसमें पञ्चनद महातीर्थ है,—यह भगवान् हरिकी उक्ति है । हे षण्मुख ! वही पूछता हूं, कि इस तीर्थका नाम पञ्चनद क्यों हुआ ? और कैसे यह सब तीर्थोंकी अपेक्षा परम पवित्र हुआ ? जो लीलाक्रमसे त्रिभुवनके हर्त्ता, कर्त्ता और पाता हैं ; जिनका रूप नहीं है, तथापि जो रूपवान् हैं, अव्यक्त और व्यक्त हैं, निराकार होकर भी साकार हैं, निष्प्रपञ्च होकर भी सप्रपञ्च हैं, जन्म और नामरहित हैं, तथापि बहुजन्म और नामधारी हैं, स्वयं निराश्रय और सबके आश्रय हैं, निर्गुण होकर भी सगुण हैं, स्वयं त्रिविधेन्द्रियशून्य अथच उनके अधिपति हैं ; जिनके चरण नहीं, पर सर्व्वग हैं, वह अन्तर्यामी भगवान् विष्णु, अपना सर्व्वव्यापक रूप उपसंहारकर सर्व्वात्मभावसे इस पञ्चनद नामक परमतीर्थमें क्यों हैं ? इस विषयमें देवदेव पञ्चाननके मुखसे जो सुना हो, वह कहिये । स्कन्दने कहा, महेश्वरको प्रणामकर, जिस तरह काशीमें पञ्चनद तीर्थ प्रसिद्ध हुआ, मैं वह अशेष कल्याणदायिनी और सर्व्वपाप-प्रशमनी बात कहता हूं । साक्षात् हरिके अवस्थानक्षेत्रमें प्रयाग भी तीर्थराज हैं, इन्हींके बलसे सब तीर्थ अपने शक्तिक्रमसे पापिगणका पाप हरण करते हैं और इनके ही समागमसे माघमासमें मकरराशिस्थ सूर्य्यसे सब तीर्थ सदा निर्म्मल होते हैं ; किन्तु तीर्थराज प्रयाग, इस पञ्चनद तीर्थके बलसे सर्व्वतीर्थार्पित मल और महापातकियोंका महापाप हरण करते हैं । तीर्थराज जो पाप वर्षभरमें सञ्चय करते, वह कार्त्तिकमासमें पञ्चनद तीर्थमें मज्जनकर त्याग देते हैं । हे महाभाग मित्रावरुणनन्दन ! जैसे इस पञ्चनदकी उत्पत्ति हुई, वह कहता हूं, सुनो । अगले समय वेदशिरा नामक मूर्त्तिमान् द्वितीय वेदकी तरह महातपस्वी भृगुवंशोत्पन्न एक मुनि थे । वह जिस समय तपस्या कर रहे थे,

उसी समय रूपलावण्यशालिनी शुचि नामे एक प्रधान अप्सरा उन्हें दिखाई दी। उसे देखते ही मुनिका मन चञ्चल और तत्क्षणात् उनका रेतःस्खलन हुआ। फिर शापभयसे थरथर कांपती हुई उस अप्सरःप्रधाना शुचिने उन्हें दूर हीसे नमस्कारकर कहा,—हे तपोनिधे! हे क्षमाधार! इस विषयमें मेरा कुछ भी अपराध ग्रहण न कर मुझे क्षमा करिये; कारण, तपस्विगण क्षमाशील ही होते हैं। हे तापससत्तम! मुनिगणका चित्त स्वभावतः प्रायः ही मृणालकी अपेक्षा भी कोमल और स्त्रीगण स्वरूपतः कठिनहृदया होती हैं। तब मुनिने उसकी यह बात सुन विवेकरूप सेतु द्वारा महाक्रोधरूप नदी वेग संरोधकर प्रसन्न हो कहा,—अयि शुचे! मैं तुम्हें यथार्थ ही शुचि देखता हूं। अयि सुन्दरि! इस विषयमें मेरा कुछ दोष नहीं है, तुम्हारा भी कोई दोष दिखाई नहीं देता। अनभिज्ञलोग ही कहते हैं, कि "रमणी वह्निस्वरूप और पुरुष नवनीतके समान हैं" किन्तु विचारसे महान् प्रभेद दिखाई देता है। नवनीत अनल संसर्ग पाते ही गल जाता है, किन्तु यही आश्चर्य है, कि पुरुष दूर रहकर भी नारीनाम श्रवणसे आर्द्र होते हैं। अतएव अयि भाविनि! तुम्हारे अतर्कित भावसे उपस्थित होनेपर ही जो मैं स्खलित हुआ हूं, उसके लिये डरना नहीं। क्षणकालके लिये कोपान्ध होनेसे जैसी मुनिजनकी तपस्याकी हानि होती है, अकामतः स्खलनसे वैसी नहीं होती। अस्तकाल उपस्थित होनेपर चन्द्रसूर्य्यका प्रकाश जैसे क्षीण हो जाता है, वैसे ही क्रोध करनेसे कृच्छ्रसञ्चित तपस्या क्षय होती है। जैसे खलजनके हृदयमें अनिष्टचिन्ता करनेसे साधुओंकी अभ्युदय-आशा दूर होती है; जो चित्ताकर्षक नहीं हैं, उनके चित्ताकर्षण करनेसे मनभिरुका उदय नहीं होता; राहुके चन्द्रमा ग्रास करनेपर कौमुदी नहीं रहती; सर्व्वत्र दावानल प्रज्वलित होनेसे स्निग्ध स्थान नहीं मिलता और सिंहके पास करिशावकको सुस्थतालाभ नहीं होता; उसी तरह अनर्थकारी क्रोधके उदय होनेपर किसी तरहका शुभ दिखाई नहीं देता। अतएव ज्ञानवान् व्यक्ति चतुर्व्वर्ग और देहके प्रतिबन्धी सब प्रयत्नसे क्रोधको परित्याग करें। अयि कल्याणि! इस समय तुम्हारा जो कर्त्तव्य है, वह सुनो,—हमलोगोंका वीर्य्य अमोघ है, अतएव यह वीर्य्य धारण करो। तुम्हारे दर्शनसे स्खलित यह वीर्य्य तुम्हारे भक्षण करनेपर एक विशुद्ध कन्यारत्न उत्पन्न होगा। उसकी यह बात सुनकर "पुनर्जन्म लाभ किया" समझ "अहो! महान् अनुग्रह" कहकर शुचिने मुनिका वह शुक्र भक्षण किया। फिर कालक्रमसे उसने दिव्याङ्गना अति नयनानन्दकर रूपशालिनी एक कन्यारत्न प्रसव किया

ग्रोर उसे उन वेदशिरा मुनिके आश्रममें रख घर चली गई। वेदशिरा मुनि अपने आश्रमस्थित हरिणीका दूध पिलाकर स्नेह-पूर्व्वक उस कन्याका प्रतिपालन करने लगी और उसके नाम उच्चारणसे पापराशि कांपती थी, इसलिये उसका "धूतपापा" ऐसा अर्थयुक्त नाम रखा। मुनि सर्व्वल-क्षणसम्पन्न अनवद्याङ्गी उस कन्याको गोदसे क्षणमात्र भी भूतलमें नहीं उतारते थे और उसे निशाकालके रमणीय चन्द्रक-लाकी तरह दिन दिन परिवर्द्धमान होती देख क्षीरसमुद्रकी तरह सातिशय आमोद लाभ करने लगी। फिर मुनिने उसे अष्टमवर्षमें पदार्पण करती देख "किसी पात्रको सम्प्रदान करूंगा" विचा-रकर उस कन्यासे ही पूछा। वेदशिराने कहा, अयि पुत्री! सुनयने! महाभागी! धूतपापे! कहो किस वरके हाथ तुम्हें अर्पण करना होगा। तब कन्या धूतपापा अति स्नेहार्द्रचित्त पिताकी बात सुनकर विनम्रमुखसे कहने लगी, हे पितः! यदि मुझे सुन्दर वरके हाथ प्रदान करना हो, तो मैं जिसकी बात कहती हूं, उसीके हाथ सम्प्रदान कीजिये; आपको भी इससे प्रसन्नता लाभ होगी। अतएव अवहित मनसे सुनिये। जो सर्व्वापेक्षा पवित्र और सबके नमस्कारयोग्य हों, सभी उनके पानेकी वाञ्छा करें, जिनसे सब सुख उदय हों, जिनका कभी विनाश न हो, सदा अनुवर्त्ती हों—इहलोक और पर-लोकमें महाविपद्से रक्षा करनेमें समर्थ हों, जिनके पास सब मनोरथ परिपूर्ण और सौभाग्य प्रतिदिन वृद्धि पावें, निरन्तर जिनकी सेवा करनेसे कोई भय न हो, जिनका नाम लेनेसे सब बाधा दूर हों और जिनसे चतुर्द्दश भुवन वर्त्तमान हैं, ऐसा जिस वरका गुणग्राम है, हे तात! उसी वरके हाथ आप भी अपने और मेरे सुखके लिये मुझे प्रदान कीजिये। पिता वेदशिरा कन्याकी यह बात सुनकर अति प्रसन्न हुए और अपनेको तथा पूर्व्व पुरुष-गणको धन्यवाद प्रदान करने लगी; यह कन्या यथार्थ ही धूतपापा है, नहीं तो ऐसी मति क्यों होती? इस समय ऐसा गुणसम्पन्न और महिमान्वित पात्र कहां मिलेगा? समधिक पुण्यसञ्चयके सिवा उसे कैसे पा सकता हूं, ऐसा विचारकर वह क्षणकाल समाधिमग्न हुए। फिर ज्ञानदृष्टिसे वैसा वर देखकर कन्यासे कहने लगी,—अयि वत्से कल्याणि! सुनो। अयि विचक्षणे! तुमने जो वरके कई एक गुण कहे, वैसे समस्त गुणके आधार अतिसुन्दराकृति वर सच हैं सही, किन्तु अनायासलभ्य नहीं; वह सुतीर्थरूप विपिणिके भीतर तपस्यासू तसे खरीदे जा सकते हैं। अयि कन्ये! अर्थ या कौली-न्यसे, वेदशास्त्राभ्याससे या ऐश्वर्य्यबलसे, रूप या बुद्धिप्रभावसे, अथवा पराक्रमकी

साथ वह सुलभ नहीं हैं; केवल चित्तशुद्धि इन्द्रियजय, दम दान, दया और कठोर तपस्याके साध्यसे वह मिल सकते हैं; नहीं तो तुम्हारे अनुरूप पति दुर्घट हैं। तब कन्या धूतपापा पिताकी बात सुनकर तपस्या करना ही श्रेयस्कर समझी और पिताको प्रणामकर उस विषयमें अनुमतिकी प्रार्थना की! स्कन्दने कहा;—वह कन्या पिताकी अनुमतिक्रमसे परम पवित्रकाशी-क्षेत्रमें तपस्विगणकी भी असाध्य कठोर तपस्या करने लगी। मनस्विगणका भी कैसा असाधारण धैर्य है! वह बालिका अपने सुकुमार अङ्गकी ओर दृक्‌पात न करके कठोरदेहसाध्य घोरतपस्यामें निमग्न हुई। उसने वर्षाकालके प्रबल वायुका झकोर और मूसलधार वृष्टि नगण्यकर शिलातलमें उपविष्ट हो कितनी ही निशा व्यतीत की। झींगुरके घोर गर्जनसे, विद्युच्चकितसे और धाराजलसिक्ताङ्गी होकर भी वह स्वल्पमात्र कम्पित न हुई। अन्धकारमयी रजनीमें तड़ित् स्फुरित हो मानो उसकी तपस्या देखनेके लिये तपोवनसे आने जाने लगी। ग्रीष्मकालमें साक्षात् ग्रीष्मऋतु मानो पञ्चअग्नि स्थापितकर उसके भीतर कुमारीव्याजमें तपोबलसे तपस्या करती जान पड़ती थी। वह बालिका पञ्चाग्नितापसे सन्तप्त होकर भी तृष्णासे ग्रीष्मऋतुमें कुशाग्रभागके जलबिन्दुपानसे भी विरत थी। अनावृतगात्रसे कम्पमान और कुण्ठितकलेवर हो तपः कृशाङ्गी उस कन्याने हेमन्तकालकी शर्वरी भी यापन की। शिशिरकालकी रजनीमें वह सरोवरका सलिल आश्रयकर रहतीं, इससे वहांके सारस पक्षिगण उन्हें पद्मिनी समझते थे। वसन्तकालमें मनस्विजनके चित्तमें भी राग उत्पन्न होता है। किन्तु सहकारपल्लवने उनके ओष्ठ-पल्लवका तम हरण कर लिया। उस वसन्तमें चारों ओर कोकिलका काकलीरव सुनकर भी उनका चित्त तपस्यासे अणुमात्र विचलित नहीं हुआ। शरत्कालमें वह तपस्विनी धूतपापा बन्धुजीव पुष्पके निकट अधरकान्ति और कलहंसके पास मन्दगति निक्षेपकी तरह स्थापनकर समस्त भोग परित्यागकर क्षुन्निवृत्तिके लिये वायुभक्षण करके रहीं। मणि जैसे शाणयन्त्रघर्षणसे कृश होकर भी समुज्ज्वल होती है, उसी तरह उनकी देहने तपस्यासे क्षीण होकर भी सातिशय दीप्ति धारण की थी। फिर ब्रह्माने उन्हें संयतचित्तसे तपस्या करते देख वहां उपनीत हो कहा, अयि सुमते! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआ हूं, वर मांगो। तब वह कन्या हंसवाहनस्थ भगवान चतुर्मुखको आगे देख हाथ जोड़कर कहने लगीं,—हे पितामह! यदि मेरा वर आप दे सकें, तो ऐसा करिये जिसमें मैं पवित्रसे भी पवित्रात्मा हो सकूं। ब्रह्माने उसका ऐसा मनोरथ सुन परितुष्ट हो

कहा,—अयि धूतपापे! इस पृथिवीमें जो कुछ पवित्र हैं, तुम मेरे वरसे उन सबसे भी अतुल पवित्र हो, अयि कन्ये! द्युलोक, भूर्लोक और अन्तरीक्षमें जो उत्तरोत्तर पवित्र साढ़े तिकोटि तीर्थ हैं, मेरे वाक्यसे वह सब तीर्थ तुम्हारे शरीरके प्रतिलोममें वास करें और तुम सर्व्वापेक्षा पवित्र हो। यह बात कहकर विधाता अन्तर्हित हुए धूतपापा भी निष्पापा हो पिता वेदशिरा मुनिकी पर्णशालामें उपस्थित हुईं। फिर एक दिन भगवान् धर्म्मने तपःक्लिष्ट उस कन्याको पर्णकुटीके आंगनमें खेलते देख प्रार्थना की। धर्म्मने कहा,—अयि सुश्रोणि! कृशोदरि! शुभानने! मैं तुम्हारे रूपसम्पदसे क्रीत हुआ हूं, इस समय मेरी प्रार्थना सफल करो; अयि सुलोचने! तुम्हारे उद्देशसे कन्दर्पवाणसे मैं नितान्त पीड़ित हुआ हूं। उस अज्ञातकुलशीलके बार बार ऐसी प्रार्थना करनेपर कन्या धूतपापाने कहा,—"हे दुर्म्मते! पिता मेरे सम्प्रदान कर्त्ता हैं, उनके पास जाकर प्रार्थना कर; यह सनातन श्रुति है, कि कन्या पिताके ही देय है।" यह बात सुनकर धर्म्म अधैर्य्य हो भवितव्यके बलवत्तावश उन धैर्य्यशालिनी कन्यासे निर्व्वन्धके साथ बारबार कहने लगे,—अयि सुन्दरि! मैं तुम्हारे पितासे प्रार्थना कर नहीं सकूंगा, तुम गान्धर्व्वविवाह विधानसे मेरा मनोरथ पूर्ण करो। ऐसा निर्व्वन्धवाक्य सुनकर कुमारी धूतपापाने पिताको कन्यादानका फल प्रदान करनेकी अभिलाषिणी हो फिर उन ब्राह्मणसे कहा,—अरे जड़मत! तुम ऐसी बात फिर न कहना, यहांसे चले जाओ। तब भी मदनातुर वह द्विज विरत नहीं हुए। इसके उपरान्त तपोबलसे बलवती उस कन्याने यह कह उन्हें अभिसम्पात दिया, कि तुमने जिस लिये सातिशय जड़की तरह काम किया है, इसलिये तुम जड़के आधार नद होकर रहो। ऐसे अभिशप्त होकर उन ब्राह्मणने भी क्रोधसे उनको प्रतिशाप प्रदान किया,—अहो कठोरहृदये! तुम भी अचेतन पाषाण होकर रहो। स्कन्दने कहा,—हे मुने! इस तरह कन्याशापसे साक्षात् धर्म्म नदरूपमें परिणत हुए; फिर काशीक्षेत्रमें यह नद "धर्म्मनद"के नामसे विख्यात हुआ। इधर कन्याने भीत हो अपने पितासे पाषाण होनेका कारण कहा। फिर मुनिने ध्यानबलसे सब जानकर कन्यासे कहा, अयि पुत्रि! डरो मत, मैं तुम्हारा अशेष शुभ करता हूं; वह शाप अन्यथा जानेको नहीं, तब तुम चन्द्रकान्त शिला हो। हे साध्वि! चन्द्रोदयमें तुम्हारा तेजु द्रवीभूत होनेपर, धूतपापा नामसे प्रसिद्ध नदी होगी। अयि कन्ये! वह धर्म्मनद ही कौमार अनुरूप भर्त्ता हैं। कारण, तुमने जिस जिस गुणकी बात कही थी, वह सर्व्वगुणालङ्कृत

हैं। अहो सुमतिसम्पन्ने! और भी कहता हूं, सुनो; मेरे तपःप्रभावसे प्राक्तन और द्रव यह दो रूप तुम्हारे होंगी। पिता वेदशिराने चन्द्रकान्तशिलामयी उस धूतपापा कन्याको इसतरह आश्वास प्रदानसे अनुगृहीत किया। हे मुने! उसी अवधिसे काशीमें धर्म्मनद नामक ह्रद विख्यात हुआ। द्रवरूपी धर्म और सर्व्वतीर्थमयी धूतपापा नदी, किनारेके वृक्षको तरह महापातकराशि उन्मूलित करती हैं। धूतपापा नदीके साथ मिलकर उस धर्म्मनद तीर्थमें जब गङ्गा नहीं आई थीं, तभी भगवान् गभस्तिमाली सूर्य गभस्तीश्वरके पास उपस्थित हो मङ्गला-गौरीकी अर्चना करते हुए उग्रतपस्या करने लगे। मयूखादित्यनामक तीर्थमें उनकी तपस्याके समय अतिश्रमनिबन्धन किरणराशिसे प्रबल खेद निकला था, वह पुण्यनदीके रूपमें परिणत हुआ। इसलिये उसका नाम किरणा हुआ। वह किरणाख्या नदी धूतपापाके साथ मिलकर स्नानमात्रसे महापापान्धकार ध्वंस करती है। जो धूतपापा सर्व्वतीर्थमयी होकर पापराशिको कम्पित करती हैं, उनके साथ पहले पुण्य धर्म्मनद मिश्रित हुआ। इसके उपरान्त जिसका नाम सुननेसे महा-मोह दूर होता है, वह रविविर्वहित किरणा नदी आकर मिली। उस पुण्य धर्म्मनदमें मिलित किरणा और धूतपापा नदीद्वय काशीमें पापसंहार करती हैं। फिर भगीरथके साथ गङ्गा आईं और उनके साथ यमुना और सरस्वती आकर मिलीं। किरणा, धूतपापा, गङ्गा, यमुना और सर-स्वती यह पांच नदी कीर्त्तित हैं। इसीसे पञ्चनद तीर्थ त्रिभुवनमें विख्यात हुआ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य फिर पाञ्चभौतिक देह धारण नहीं करते। पापराशिखण्डक इस पञ्चनदीसङ्गममें स्नान करते ही मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डल भेदकर गमन करता है। काशीमें प्रति पदक्षेपमें कितने ही तीर्थ हैं सही, किन्तु वह सब तीर्थ इस पञ्चनद तीर्थके कोटिभागके एकभाग बराबर भी नहीं हैं। प्रयाग क्षेत्रमें माघमासमें स्नान करनेसे जो फल होता है, इसमें केवल एक दिन स्नान करनेसे वह फल मिलता है। पञ्चनदतीर्थमें स्नान और पितृतर्पणकर बिन्दुमाध-वकी अर्चना करनेसे मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। पवित्र पञ्चनद तीर्थमें तर्प-णके समय पितृपुरुषोंके उद्देश्यसे जितने तिल प्रदत्त हों, उतने ही वर्ष वह लोग तृप्ति पाते हैं। श्रद्धापूर्व्वक जो इस तीर्थमें श्राद्ध करते हैं, उनके पितामहगण नानायोनिगत होनेपर भी मुक्ति पाते हैं। पितृगण पञ्च-नद तीर्थकी महिमा देख यमलोकमें यश गाते हैं, कि "हमलोगोंका भी कोई न कोई अधस्तन पुरुष श्रद्धालु हो इस तीर्थमें श्राद्ध करेंगे, जिससे हमलोग भी मुक्त होंगे।"

ऐसा यश प्रतिदिन आदिदेवके पास काशी-स्थित पञ्चनदके उद्देशसे पितृगण गाया करते हैं। इस पञ्चनद तीर्थमें जो कुछ धनदान किया जाय, उसका पुण्य प्रलयकालमें भी क्षय नहीं होता। बन्ध्या स्त्री यदि वर्षभर पञ्चनद ह्रदमें स्नान और मङ्गलागौरीकी अर्चना करें, तो उन्हें निश्चय सन्तान होगा। वस्त्रशोधित पुण्य इस पञ्चनदके जलसे इष्टदेवताको स्नान करानेसे, मनुष्य महाफल पाते हैं। अष्टोत्तर शत पञ्चामृतपूर्ण कलसके साथ तौल करनेपर, पञ्चनदका एकबिन्दु जल अधिक होता है। पञ्चकुर्च पान करनेमें जो शुद्धि कही गई है, श्रद्धाके साथ एकबिन्दु पञ्चनदका जल पीनेसे वैसी शुद्धि मिलती है। राजसूय और अश्वमेध यज्ञमें अवभृथ स्नान करनेसे जैसा फल मिलता है, इस पञ्चनद जलमें स्नान करनेसे उसका शतगुण पुण्य होता है। कारण, राजसूय और अश्वमेध याग ब्रह्माके दो दण्ड कालतक सब स्वर्ग-फल प्रदान करते हैं, किन्तु पञ्चनदमें स्नान करनेसे मुक्तिफल मिलता है। स्वर्गराज्य अभिषिक्त भी वैसा सज्जन सम्मत नहीं, जैसा पञ्चनदतीर्थ अभिषिक्त है। इस पञ्चनदतीर्थमें उज्ज्वल काशीधाममें भृत्य होकर रहना अच्छा, किन्तु दूसरी जगह कोटि कोटि भूपतिके अधीश्वर होकर रहना भी अच्छा नहीं। जो कार्त्तिकमासमें पञ्चनदतीर्थमें स्नान नहीं करते, वह आजतक गर्भमें अवस्थान करते हैं और फिर गर्भवास करेंगे। सत्ययुगमें धर्म्मनद, त्रेतायुगमें धूतपापा, द्वापरमें बिन्दुतीर्थ और कलियुगमें पञ्चनदतीर्थको प्रशस्त समझें। दूसरी जगह यावज्जीवन याग, वापी-कूप आदि खोदानेका धर्म्मकार्य्य करनेसे जो फल होता है, कार्त्तिकमासमें इस पञ्चनद तीर्थमें एकबार स्नान करनेसे वैसा फल मिलता हैं। धूतपापा जैसा तीर्थ त्रिभुवनमें नहीं है; कारण, इसमें सकृत् स्नान करनेसे शतजन्मार्ज्जित पाप खण्डन होता है, बिन्दुतीर्थमें जो व्यक्ति गुञ्जा परिमित सुवर्ण दान करते हैं, वह कभी दरिद्र और सुवर्णहीन नहीं होते। इस बिन्दुतीर्थमें धेनु, भूमि, तिल, हिरण्य, अश्व, अन्न, वस्त्र और अलङ्कार जो व्यक्ति दान करते हैं, उन्हें अक्षयफल होता है। पवित्र धर्म्मनदतीर्थमें, प्रज्वलित अनलमें यथाविधि एकबार आहुति प्रदान करनेसे, मनुष्य कोटि होमका फल पाते हैं, चतुर्व्वर्ग-फलदायी पञ्चनदतीर्थकी अपार महिमा वर्णन करनेमें कोई समर्थ नहीं। इस पुण्य आख्यानके भक्तिपूर्व्वक सुननेसे या सुनानेसे सर्व्वपाप मुक्त हो मनुष्य विष्णुलोकमें सत्कृत होते हैं।

एकोनषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥

षष्टितम अध्याय।

विन्दुमाधवका आविर्भाव।

स्कन्दने कहा, हे मित्रावरुणनन्दन! पञ्चनदतीर्थकी उत्पत्तिकथा कही; इस समय माधवके आविष्कारकी कथा कहता हूं, सुनो। इसके श्रद्धापूर्व्वक सुननेसे धीमान् व्यक्ति, क्षणकालमें पापमुक्त होते हैं, श्री और धर्म्म उन्हें परित्याग नहीं करता। भगवान् उपेन्द्र चन्द्रशेखरसे बिदा ले, गरुड़की पीठपर आरूढ़ हो मन्दरपर्व्वतसे शीघ्र बाराणसी पुरीमें आये। वह अपने मायाप्रभावसे वहांके राजा दिवोदासको उच्चाटन कर, केशवाख्यस्वरूपी पादोदकतीर्थमें स्नानकर काशीकी महिमा मन ही मन विचार—सुविचारकर पञ्चनदतीर्थके दर्शनसे परम आनन्दित हुए। तब प्रसन्नचित्त पुण्डरीकाक्ष अपने मन ही मन कहने लगे, कि वैकुण्ठलोकके अगण्य गुण भी मुझे विगुण जान पड़ते हैं। इस काशीस्थित पुण्य पञ्चनदतीर्थमें जैसा गुण देखता हूं, क्षीरसमुद्रमें भी वैसा निर्म्मल गुण दिखाई नहीं देता। इस काशीमें जैसी अतिपवित्र धूतपापा विद्यमान हैं, श्वेतद्वीपमें भी गुणकी वह गुरुतर सामग्री नहीं है। मुझे कौमोदकी गदास्पर्श वैसा आनन्दकर नहीं होता, जैसा आनन्द धूतपापाके जलस्पर्शसे मिलता है। धूतपापाके स्पर्शसे जैसा सुख मिलता है, साक्षात् लक्ष्मीके आलिङ्गनसे भी क्या वैसा सुख हो सकता है? ऐसा मन ही मन विचार त्र्यम्बकके पास समाचार देनेके लिये गरुड़को भेजकर दिवोदास राजाका, आनन्दकानन काशीका और पवित्र पञ्चनदतीर्थका गुणग्राम वर्णन करते हुए पञ्चनदतीर्थमें हृष्टमनसे सुखोपविष्ट, सुदृष्टिसम्पन्न, विष्टरश्रवा माधवने कृशावयव तपःसेवित एक तपोधनको देखा। उन ऋषिने उनके समीपवर्त्ती हो, वेदचतुष्टय जिनके आकारसे अवगत नहीं उपनिषद जिनका तत्त्व कहनेमें असमर्थ हैं, ब्रह्मादि देवगण जिनसे अवगत नहीं, पास ही पद्मासनसे आसीन उन अखिलदानवघाती, मधुकैटभविनाशक, कंसध्वंसकारी पुण्डरीकाक्ष अच्युतको देखा। देखा, अच्युत, वनमालाविभूषित, करचतुष्टयमें शङ्ख चक्र गदा पद्म शोभित, वक्षःस्थल कौस्तुभमणि द्वारा उद्भासित, पीत कौषेयवस्त्र परिधान; उनका वर्ण नीलेन्दीवर जैसा, आकार सुस्निग्ध मधुर, उनका नाभिपद्म और हृत-पद्म अति सुन्दर, ओष्ठाधर अतिशय रक्त-वर्ण दशनावली दाड़िमीबीजकी तरह हैं। ऋषिने देखा, उनके किरीटशोभासे आकाश उद्भासित है, देवेन्द्र उनकी चरणवन्दना करते हैं, सनकादि ऋषिगण उनका स्तव करते हैं, नारदादि देवर्षिवृन्द उनकी महोदय कथा कीर्त्तन करते हैं, प्रह्लाद प्रभृति भगवद्भक्तगण उनके हृदयका आनन्दविधान करते हैं, वह शार्ङ्गधनु धारण किये हुए

हैं। जो अवाङ्मनसगोचर अद्वितीय परब्रह्म हैं, वही भक्तगणके भक्तिबलसे इस पुरुषमूर्त्तिमें परिणत हुए हैं। उन महातपा अग्निबिन्दु ऋषिने भगवद्दर्शनसे आनन्दित हो अवनितलविलुण्ठितमस्तकसे हृषिकेशको प्रणाम किया। फिर उन्होंने विस्तीर्ण शिलापर उपविष्ट बलिध्वंसी अच्युतका, परमभक्तिके साथ मस्तकपर अञ्जलिबांध स्तव किया। अग्निबिन्दु, मार्कण्डेयादिसेवित उस पञ्चनदतीर्थके समीप हृष्टमनसे गोविन्दका स्तव करने लगे, हे पुण्डरीकाक्ष! तुम बाह्याभ्यन्तरके शुद्धिप्रद हो सहस्रशीर्षा, सहस्रनेत्र और सहस्रचरण पुरुष हो; ब्रह्मविष्णुमहेश्वर स्वरूप तुमको नमस्कार है। हे इन्द्रादिसुरगणवन्दित! विष्णो! सर्व्वद्वन्द्वनिवारक तुम्हारे पदयुगलको मैं एकाग्रमनसे प्रणाम करता हूं। वाचस्पतिके वाक्य भी जिनका स्तव करनेमें असमर्थ हैं, उनका स्तव करनेमें कौन समर्थ है? तब भी मैं जिस स्तवमें प्रवृत्त हुआ हूं, उस विषयमें भक्तिका प्राबल्य है। हे भगवान् ईश्वर, वाक्यमनके अगोचर, वह वाक्यातीत पुरुष मेरे जैसे अल्पबुद्धि जनगणके स्तवनीय कैसे होंगे? वाक्य जिनमें प्रविष्ट होनेमें असमर्थ है, मन जिनको मनन करनेमें अपारग है, वाक्य और मनके अतीत उस वस्तुका स्तव करनेको किसकी शक्ति है? षडङ्ग पदक्रमसमन्वित वेदसमूह जिनके निश्वास हैं, (निश्वासवत् अनायाससे उत्पन्न हैं) उन देवकी महामहिमासे कौन अवगत हो सकता है? तद्गतपरमना, तत्परबुद्धि और तत्परेन्द्रिय सनकादि ऋषिगण, हृदयाकाशमें ध्यान करते हुए भी जिनको यथार्थतः जान नहीं सकते, आबाल्यब्रह्मचारी नारदादि मुनिवरगण सदा चरित्रगीत गाकर भी जिनसे सम्यक्प्रकारसे विदित हो नहीं सकती, ब्रह्मादिके अगोचर, अजेय, अनन्तशक्ति, अव्यय, एक, आद्य, अज, सूक्ष्मरूप, नित्य, निरामय, निराकार, अचिन्त्यस्वरूप तुमको—हे चराचर हे चराचरभिन्न! तुमको कौन जान सकता है? हे हरे! हे मुरारे! तुम्हारे एक भी नाम पापिगणके जन्मान्तर सञ्चित महापातकादि पाप हरण करता है, "मुकुन्द"! "मधुसूदन"! "माधव"! इन सब पूजित नामका जप करनेसे उत्तम यज्ञका फल मिलता है। "नारायण" नरकार्णव-तारण" "दामोदर" मधूसूदन" "चतुर्भुज" "विश्वम्भर" "विरज" और "जनार्द्दन" इस नामका जप करनेसे यमभय भी नहीं रहता और फिर जन्म भी नहीं होता। हे त्रिविक्रम! हे सौदामिनीसदृशपीतवसनपरिधान! जो तुम्हारे नवघनचयसुन्दर श्यामलवर्ण पुण्डरीकाक्षमूर्त्ति हृदयमें अनुशीलन करते हैं, वह भी तुम्हारा अचिन्त्यरूप सारूप्य पाते हैं। हे श्रीवत्सलाञ्छन! हरे! अच्युत! कैट-

भारे! गोविन्द! गरुड़ध्वज! केशव! हे चक्रपाणे! लक्ष्मीपते! शार्ङ्गधर! दैत्यसूदन! तुम्हारे भक्तोंको कहीं भी भय नहीं है। हे भगवन्! मृगमद-(मृगनाभि) सौरभ विजयि-दिव्यगन्धसम्पन्न तुलसी कुसुम द्वारा जो तुम्हारी पूजा करते हैं, स्वर्गमें सब देवगण, मन्दारमाल्य द्वारा उन निर्म्मलस्वभावसम्पन्न व्यक्तिगणकी पूजा करते हैं। हे कमललोचन! अभिलाषप्रद तुम्हारा नाम जिनकी बात है, तुम्हारी मधुराक्षर बात जिनके कर्णमें है, तुम्हारा रूप जिनकी चित्तभित्तिमें लिखित है, निराकार ब्रह्मपदप्राप्ति भी उनके पक्षमें दुर्घट नहीं है। हे स्वर्ग-मोक्ष-सुखसमूह दानदक्ष! अनन्तशायिन्! श्रीनाथ! पृथिवीमें जो तुम्हारा भजन करते हैं, इन्द्र, यम, कुवेरप्रमुख देवगण, सदा ही स्वर्गमें उनका सम्मान करते हैं। हे कमलपाणे! कमलायतलोचन! जो सदा तुम्हारा स्तव करते हैं, सिद्धगण, अप्सरागण और देवगण, स्वर्गमें उनका स्तव करते हैं। हे अखिलसिद्धिपद! निर्व्वाणमुक्तिके रुचिरलक्ष्मीवितरण तुम्हारे बिना और किसका काम है? हे लीलामूर्त्ते! हे विरिञ्चिनमस्कृतचरणयुगल! अपने लीलाक्रमसे क्षणमें जगत्सृष्टि, जगत्पालन और जगत्संहार तुम्हीं करते हो; हे परम! तुम जगत् हो, तुम्हीं जगत्पति और तुम्हीं जगत्के बीज हो, अतएव मैं तुम्हें नित्य प्रणाम करता हूं। हे दनुजेन्द्ररिपो! तुम्हीं स्तोता, तुम्हीं स्तुति और तुम्हीं स्तवनीय हो; एक तुम्हीं सब हो। हे विष्णो! मैं तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी नहीं समझता। हे भवशमनकर! मेरी संसारतृष्णा दूर करो। महातपा अग्निविन्दु इसतरह हृषीकेशका स्तवकर तूष्णीम्भूत हुए, तब वरदाता विष्णुने मुनिसे कहा, हे महाप्राज्ञ! महातपोनिधे! अग्निविन्दो! मैंने उत्तम प्रीतिलाभ किया है; मेरा कुछ भी तुम्हारे अदेय नहीं है; वरकी प्रार्थना करो। अग्निविन्दुने कहा, हे वैकुण्ठेश! जगत्पते! भगवन्! कमाकान्त! यदि प्रसन्न हुए हों, तो जो मैं इस समय प्रार्थना करूं, प्रदान कीजिये। हरिके भ्रूभङ्गी द्वारा उन तापसको अनुमति देनेपर उन्होंने प्रणामकर हृष्टमनसे, कौशवसे वरकी प्रार्थना की, कि हे भगवन्! आप सर्व्वग होनेपर भी सर्व्वप्राणिगणके विशेषतः मुमुक्षुगणके हितके लिये इस पञ्चनदह्रदतीर्थमें अवस्थान करिये। हे माधव! कुछ भी विचार न करके यही वर मुझे देना होगा। आपके पदकमलमें भक्तिकी प्रार्थना करता हूं; दूसरा वर मुझे नहीं चाहिये। श्रीपति मधुसूदनने अग्निविन्दुकी बात सुनकर प्रसन्नचित्तसे परोपकारके लिये "तथास्तु" कहा था। विष्णुने कहा, हे मुनिश्रेष्ठ अग्निविन्दो! काशीभक्त मनुष्योंको मुक्तिप-

थका उपदेश करते हुए इस जगह में निश्चय रहूंगा। मुने! तुम मेरे अत्यन्त दृढ़भक्त हो मुझमें तुम्हारी भक्ति रहे। मैं प्रसन्न हुआ हूं, दूसरे वरकी प्रार्थना करो; तुम्हें कुछ और भी प्रदान करता हूं। हे तपोनिधे! पहले होसे मैं यहां रहनेका अभिलाषी था, इसपर तुमने प्रार्थना की; मैं सदा इस स्थानमें रहूंगा। ज्ञान यदि हो, तो काशीमें उपस्थित होकर कौन दुर्म्मेधा मानव, फिर उसे परित्याग करते हैं? अमूल्य माणिक्य पाकर और उसे परित्यागकर कांचके लिये कौन चेष्टा करते हैं? यतिप्रत्यश्रम—अवश्य-नश्वर शरीर-पात मात्र है;—इसको ऐसी अविलम्ब मुक्ति और कहां मिलेगी? प्राज्ञगण, यहां जराजीर्ण पार्थिव देहके विनिमयसे जरा-शून्य अमृतदेह ग्रहणमें पराङ्मुख होते हैं? काशीमें देहत्यागमात्रसे जो लाभ होता है, अन्यत्र तपस्या, दान और बहुदक्षिणासम्पन्न यज्ञद्वारा भी वैसा लाभ नहीं होता—वह मुक्ति नहीं मिलती। योगनिष्ठ संयतचित्त योगिगण एक जन्ममें मुक्ति पा नहीं सकते; किन्तु काशीमें देहत्यागमात्रसे ही मुक्ति होती है। काशीमें मृत्यु ही महादान, महातपस्या और महत्व्रत है। जो व्यक्ति काशीमें आकर फिर त्याग नहीं करते, जगत्में वही विद्वान्, वही जितेन्द्रिय, वही पुण्यवान् और वही धन्य हैं। हे मुने! जबतक काशी है, तबतक मैं यहीं रहूंगा। शिवशूलाग्रपर उत्तमरूपसे स्थित काशीका नाश प्रलयमें भी नहीं है। महामुनि अग्नि-बिन्दुने विष्णुकी बात सुनकर रोमाञ्चित-शरीर हो कहा, मैं फिर दूसरे वरकी प्रार्थना करता हूं। हे माधव! इस शुभ पञ्चनदतीर्थमें रहकर भक्तगणको और अभक्तगणको मेरे नाम द्वारा मुक्ति प्रदान कीजिये। जो मनुष्य इस पञ्चनदतीर्थमें स्नानकर देशान्तरमें पञ्चत्वप्राप्त हुए हैं, उन्हें भी मुक्ति प्रदान कीजिये। जो मनुष्य पञ्चनदतीर्थमें स्नानकर आपका भजन करें, चञ्चला या स्थिरा, चाहे जैसे हो, लक्ष्मी उन लोगोंकी परित्याग न करें। श्रीविष्णुने कहा, हे मुने! अग्निबिन्दो! मान्यवर तुमने जो प्रार्थना की, वही होगा, मेरे नामके साथ तुम्हारा नामार्द्ध मिलित होगा। काशीमें मेरा त्रिलोक-विख्यात "बिन्दुमाधव" नाम होगा। इस नामसे महापापसमूह विनष्ट होगा। जो पवित्र मनुष्य इस पवित्र पञ्चनदह्रदमें सदा मेरी पूजा करें, उन्हें फिर संसारभय कहां? पञ्चनदतीर्थस्थित मैं जिनके हृदयमें हूं; धनधान्यरूपिणी लक्ष्मी और मोक्षलक्ष्मी सदा उनकी पार्श्वचरी हैं। जो पञ्चनदतीर्थमें आकर ब्राह्मण-गणको धन द्वारा प्रसन्न नहीं करते, शीघ्र ही जब वह पञ्चत्व पावेंगे, तो उनका वह धन रोयेगा। जो मेरे पास आकर मुझे धन दे गये हैं, इहलोकमें वही धन्य हैं,

वही कृतार्थ हैं। हे सर्व्वपातकनाशन! मुनिवर अग्निविन्दो! तुम्हारे नामसे इसका नाम होगा,—विन्दुतीर्थ। जो ब्रह्मचर्य्य-परायण व्यक्ति कार्त्तिकमासमें सूर्य्योदयके पहले इस विन्दुतीर्थमें स्नान करेंगे, उन्हें फिर यम भय कहां? मानव, मोहवश सहस्र सहस्र पापकार्य्य करके भी कार्त्तिक-मासमें धर्म्मनदमें स्नान करनेपर, क्षणमें निष्पाप होते हैं। जितने दिनों देह सुस्थ रहे, जबतक इन्द्रियविप्लव न हो, तबतक व्रत करेंगे; इसलिये, कि व्रत ही देहका फल है। इस अशुचिपात्र देहको, एकभक्त, नक्त, अयाचितव्रत और उपवास-द्वारा संशोधित करना होता है। कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत यत्नके साथ अनुष्ठेय है। इसलिये, कि स्वभावतः अपवित्र देह, व्रत करनेसे पवित्र होती है। व्रतसमूह द्वारा संशोधित देहमें, धर्म्म स्थिरभावसे वास करते हैं। जहां धर्म्म रहते हैं, निर्व्वाणमुक्तिके साथ अर्थ काम भी वहीं वर्त्तमान हैं। अतएव चतुर्व्वर्गफलप्रार्थी मनुष्य सदा व्रताचरण करेंगे। क्योंकि, व्रत, धर्म्मका सान्निध्यकर है। मनुष्य यदि सदा व्रत न कर सकें, तो चातुर्म्मास्य आनेपर यत्नके साथ करें। भूमिमें शयन, एकभक्त, किसी एक तरहका खाद्य-परित्याग, एकभक्तादि नियम, यथाशक्ति नित्य-दान, पुराणश्रवण, पुराणके उपदेशकी तरह आचरण, अखण्डदीपदान या इष्ट-देवताकी महापूजा कर्त्तव्य है। श्रीमान् मानव, प्रचुर अङ्कुरवीजयुक्त भूमिमें यत्नके साथ आना जाना वर्ज्जन करेंगे। इसकी वर्ज्जन करनेसे धर्म्मवृद्धि होती है। चातुर्म्मास्य व्रतावलम्बी मनुष्य असम्भाष्य व्यक्तिके साथ सम्भाषण न करें। सदा मौनावलम्ब करें, अथवा सच बात ही कहें। व्रती व्यक्ति, निष्पाव, मसूर और कोद्रव वर्ज्जन करेंगे। सदा पवित्रभावसे रहें; अव्रती व्यक्तिको स्पर्श न करें। व्रती, दन्तशोधन, केशशोधन और वस्त्रादिशोधन यत्नके साथ नित्य करें। व्रती कभी मनमें अनिष्टचिन्ता न करें। सम्पूर्ण द्वादश महीने व्रत करनेसे जो फल मिलता है, चातुर्म्मास्य-व्रतीगणको भी सम्पूर्ण वही फल मिलता है। चातुर्म्मास्य व्रतकी भी यदि शक्ति न हो, तो संवत्सरव्रतफलाभिलाषी व्यक्ति कार्त्तिकमासमें व्रत करें, जिन मूढ़बुद्धि मनुष्योंका कार्त्तिकमास बिना व्रतके व्यतीत होता है, उन शूकरस्वरूप मनुष्योंमें लेशमात्र भी पुण्य नहीं है। अत्यन्त पुण्यवान् व्यक्ति, कार्त्तिकमास आनेपर, तप्तकृच्छ्र, अतिकृच्छ्र अथवा यथाशक्ति प्राजापत्य व्रत करें। कार्त्तिकमास आनेपर व्रती मानव, एकान्तरव्रत, त्रिरात्रव्रत, पञ्चरात्रव्रत, सप्तरात्रव्रत, पक्षव्रत, अथवा मासोपवासव्रत करेंगे। अव्रती होकर कोई कभी कार्त्तिकमासको विफल न होने दें। कार्त्तिकमास आनेपर, व्रती मानव, शाकाहार, पयो-

मात्राहार; फलाहार अथवा यवान्नाहार करें। व्रती व्यक्ति कार्त्तिकमासमें नित्त नैमित्तिक स्नान करें। महाव्रतफलार्थी मानव, कार्त्तिकमासमें ब्रह्मचर्य्यसे रहें। जो व्यक्ति, पवित्र चित्तसे कार्त्तिकमास ब्रह्मचर्य्यमें बिताते हैं, उन्हें सम्पूर्ण वर्ष ब्रह्मचर्य्य करनेका फल मिलता है। जो व्यक्ति उपवास द्वारा समस्त कार्त्तिकमास बिताते हैं, उन्हें सम्पूर्ण एकवर्ष उपवास करनेका फल मिलता है। जो शाकमात्र भोजन या पयोमात्र आहार द्वारा समस्त कार्त्तिकमास व्यतीत करते हैं, उन्हें उन उन वस्तुमात्रके भोजनसे सम्पूर्ण वर्ष बितानेका फल मिलता है। कार्त्तिकमासमें पत्तेपर भोजन करें; यत्नके साथ कांस्यपात्र परित्याग करें। जो व्रती कांस्यपात्रमें भोजन करेंगे, उन्हें उस व्रतका फल न होगा। कांस्यवर्ज्जन नियम करनेपर फिर घृतपूर्ण कांस्यपात्र प्रदान करेंगे। कार्त्तिकमासमें मधु भोजन न करें; मधु भोजन करनेसे क्षुद्रगति मिलती है। मधु त्याग करनेपर, घृत देंगे और शर्करायुक्त पायस देंगे। कार्त्तिकमासमें, मर्द्दन और भक्षणमें तैल परित्याग करें। हे अनघ! इसलिये, कि कार्त्तिकमें तैल मलनेसे, वह देही नारकी होता है। तैल त्याग करनेपर काञ्चनखण्डयुक्त द्रोणपरिमित तिल देंगे। कार्त्तिकमासमें मत्स्यभोजी व्यक्ति, तिमिमत्स्ययोनि पाते हैं। कार्त्तिकमासमें मांसभोजी व्यक्ति, पूयशोणित कृमि होते हैं। क्षत्रियोंकी मांसभोजनविधि है सही, किन्तु वह भी कार्त्तिकमासमें मांस भोजन न करें कार्त्तिकमासमें मत्स्यमांस त्याग करनेसे ही व्रततत्पर हो सकते हैं। कार्त्तिकमें मत्स्यमांसभोजनरूप दोषसे निश्चय सर्प होना पड़ता है। कार्त्तिकमें मत्स्यमांसपरित्यागव्रत करनेसे, शेषमें माषयुक्त और स्वर्णयुक्त दश कुष्माण्ड प्रदान करेंगे। जो व्यक्ति कार्त्तिकमासमें मौनावलम्बनकर भोजन करते, वह अमृत ही भोजन करते हैं। मौनव्रती, व्रतके अन्तमें तिल और स्वर्णसहित उत्तम घण्टा प्रदान करें। जिन्होंने व्रतावलम्बी हो कार्त्तिकमासमें लवण परित्याग किया है, उन्हें सब रस परित्यागका फल मिलता है। लवणत्यागी शेषमें गोदान करें। कार्त्तिकमें भूमिशय्याव्रत करनेसे, उस व्रतीका संसारबन्धन नहीं होता। भूमिशायी व्यक्ति सतुल और सोपधान पर्य्यङ्क प्रदान करें। जो व्यक्ति घृतवर्त्तियुक्त अखण्डदीप सम्पूर्ण कार्त्तिकमासमें प्रदान करते हैं, वह मोहान्धतमको प्राप्त हो दुर्गति नहीं पाते। जो व्यक्ति कार्त्तिकमासमें दीप ज्योत्स्ना (आकाशप्रदीप अथवा दीपमाला) करते हैं, उन्हें कभी तामिस्र और अन्धतामिस्र नरक देखना नहीं पड़ता। कार्त्तिकमें दीपदान करनेसे पापान्धकारके प्रति क्रोध प्रकाश कर सकते हैं; कार्त्तिकमें दीपदाता व्यक्ति

यमका क्रोधान्धकारित मुख नहीं देखते। जो व्यक्ति मेरे समीप उज्ज्वलवर्त्तिका-सम्पन्न दीप प्रदान करते हैं, इन्हें चराचर त्रैलोक्य ज्योतिर्म्मय दिखाई देता है। जो मानव, कार्त्तिकमासमें पञ्चामृतपूर्ण कलस द्वारा मुझे स्नान कराते हैं, वह पुण्यवान् व्यक्ति चौरसागरमें जाकर एककल्प वास करते हैं। कार्त्तिकमासमें प्रति रात भक्तिके साथ मेरे आगे दीपज्योत्स्ना करनेसे फिर गर्भान्धकारमें प्रवेश करना नहीं पड़ता। जो व्यक्ति कार्त्तिकमासमें घृतवर्त्तिसम्पन्न दीप मेरे आगे प्रज्वलित करते हैं, महामृत्युभयसे भी उनकी बुद्धिभ्रंश नहीं होता। कार्त्तिकमासमें जो भक्तियुक्त हो विन्दुतीर्थमें स्नानकर मेरी "यात्रा" करते हैं, मोक्ष उनके दूरवर्त्ती नहीं; मेरे व्रतपरायण कार्त्तिकमासमें यथाविधि कृतस्नान व्यक्तिको मुक्ति भी दूर नहीं है।" हे दामोदर! हे दनुजेन्द्रनिसूदन! अर्घ्य ग्रहण करो। हे कृष्ण! कार्त्तिकमासमें यह पापशोषक नैमित्तिक स्नान उपलक्षमें मैं अर्घ्य देता हूं. राधासहित आप ग्रहण करिये।" इस अर्थका मन्त्रद्वय पढ़कर स्वर्ण और रत्नयुक्त पुष्पजल, शङ्खमें लेकर पुण्यवान व्यक्ति यदि मुझे अर्घ्य दें,, तो उन्हें सङ्कल्पपूर्व्वक, उत्तमपर्व्वमें सत्पात्रको सुवर्णपूर्ण पृथिवीदानका सम्पूर्ण फल मिलता है। मेरी उत्थानैकादशी पाकर विन्दुतीर्थमें स्नान, रात्रिजागरण, बहुत दीपदान और यथाशक्ति और यथाविधि मुझे भूषणसम्पादनपूर्व्वक, जबतक पूर्णातिथि न हो, तबतक तौर्य्यत्रिक वाद्यविनोद और पुराण श्रवणादि द्वारा महामहोत्सव करनेसे, और मेरी प्रसन्नताके लिये इस क्षेत्रमें बहुत अन्नदान करनेसे; महापातकी होनेपर भी उन्हें फिर रमणीजठरमें प्रवेश करना नहीं पड़ता। जो व्यक्ति इस विन्दुतीर्थमें स्नानकर विन्दुमाधव नामक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें निर्व्वाणप्राप्ति होती है। हे मुने! मैं सत्ययुगमें आदिमाधव नामसे पूज्य हूं; त्रेतायुगमें अनन्त माधव नामसे, ऐसा समझो, कि मैं सर्व्वसिद्धि प्रदान करता हूं; द्वापरयुगमें श्रीदमाधव नामसे मैं परमार्थ प्रदान करता हूं। कलियुगमें मैं कलिमल-विनाशक विन्दुमाधव हूं। कलिमें पापी मनुष्य मुझे नहीं पाते। मेरी ही मायासे मोहित जो मनुष्य, भेदबुद्धिप्रयुक्त मेरी भक्ति करते हैं और विश्वेश्वरसे द्वेष करते हैं, वह मेरे विद्वेष्य हैं, उन्हें पिशाचयोनि मिलती है। पिशाचयोनि पाकर कालभैरवशासनसे, द्वात्रिंशत् सहस्र वर्ष दुःखसागरमें रह, फिर विश्वेश्वरको अनुग्रहसे ही मुक्ति पाते हैं। अतएव मनुष्य परमात्मा विश्वेश्वरके प्रति द्वेष न करेंगे। इसलिये, कि विश्वेश्वरद्वेष्टा पुरुषोंको प्रायश्चित्त नहीं है। जो अधम मन ही मन भी विश्वेश्वरका

विद्वेष करती हैं, वह अन्यत्र पञ्चत्वको प्राप्त हो सदा अन्धतामिस्र नरकमें वास करती हैं। जो शिवनिन्दा-परायण हैं, जो पाशुपातगणकी निन्दा करते हैं, वह मेरे ही द्वेष्टा हैं, वह अपवित्र नरकमें पतित होते हैं। जो विश्वेश्वरके निन्दक हैं, वह अष्टाविंशति कोटि नरकमें क्रम क्रमसे एक एक एक कल्पतक वास करते हैं। हे मुने! मैं भी विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे ही मुक्ति देनेमें समर्थ हुआ हूं। अतएव मेरे भक्तगण विश्वेश्वरकी सदा विशेषरूपसे सेवा करेंगी। हे मुने! यह वाराणसी, पाशुपतक्षेत्र है। अतएव मुक्तिप्रार्थिगण, काशीमें विश्वेश्वरकी सेवा करेंगी। कार्त्तिकमासमें, स्वयं विश्वेश्वर इस पञ्चनदतीर्थमें गणपति, कार्त्तिकेय और परिजनके साथ प्रतिवर्ष नित्य स्नान करते हैं। वेद और यज्ञगणके साथ ब्रह्मा, ब्रह्माणी प्रभृति मातृगण और नदीसमूहके साथ सप्तसागर, धूतपापा सम्मिलित इस पञ्चनदतीर्थमें कार्त्तिकमासमें स्नान करती हैं। त्रैलोक्यमें जितने ज्ञानसम्पन्न प्राणी हैं, सभी कार्त्तिकमासमें धूतपापासम्मिलित इस तीर्थमें स्नान करने आते हैं। शुभ कार्त्तिकमासमें जिन्होंने पञ्चनदतीर्थमें स्नान नहीं किया, उन प्राणियोंका जलके बुलबुलेकी तरह जीवन विफल व्यतीत हुआ। हे महा मुने! अग्निविन्दो! आनन्दकानन पवित्र है, उसके भीतर पवित्र पञ्चनदतीर्थ है; यह स्थान मेरे रहनेसे पहलेकी अपेक्षा भी पवित्र है। हे महाप्राज्ञ! इस अनुमान द्वारा ही पञ्चनदतीर्थके सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तम माहात्म्यसे अवगत हो। इसके सुननेसे भी मनुष्य महापापसे मुक्त हो महाज्ञानसम्पन्न होते हैं। महामुनि अग्निविन्दुने विष्णुकी यह सब बातें सुन उन विन्दुमाधव अच्युतको प्रणामकर फिर पूछा, हे भगवन्! विन्दुमाधव! आपके भक्त जिस मूर्त्तिकी पूजाकर कृतार्थ होते हैं, काशीमें वैसी कितने प्रकारकी आपकी मूर्त्ति वर्त्तमान है, उसके सुननेकी मुझे इच्छा है, जनार्द्दन! वह कीर्त्तन कीजिये। और भविष्यतमें ही काशीमें कितनी तरहकी मूर्त्ति होंगी, हे अच्युत! यह सब मुझसे कहिये।

षष्टितम अध्याय समाप्त॥ ६०॥

एकषष्टितम अध्याय।

विष्णुका मूर्त्तिभेद।

महर्षि अगस्त्यने कहा, हे कार्त्तिकेय! पापहारी विन्दुमाधवका उपाख्यान और पञ्चनदका माहात्म्य सुना, सम्प्रति अग्निविन्दुने दानवारि मधुसूदनसे पूछा था, तो उन्होंने उसका क्या प्रत्युत्तर प्रदान किया, वह मुझसे कहिये। तब कार्त्तिकेयने कहा, हे ऋषिवर! केशवने मुनिवर अग्निविन्दुसे जो कहा था, मैं वह कहता हूं,

सुनो। विन्दुमाधवने कहा, हे प्रभाशालिन् अग्निविन्दो! मैं पहले पादोदकतीर्थमें आदिनारायणरूपमें अवस्थित हो भक्तवृन्दको मोक्षपद समर्पण करता हूं। जो मनुष्यगण, अविमुक्तधामके अमृतक्षेत्रमें मेरे इस रूपकी अर्चना करते हैं, वह निश्चय समुदय दुःखसे विमुक्त हो चरममें मुक्तिलाभमें समर्थ होते हैं। आदिकेशव, मङ्गलेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापनकर मानवगणको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। उनके प्रतिष्ठित शिवलिङ्गके दर्शनसे मनुष्यकी सब पापराशि दूरीभूत होती है। पादोदकतीर्थके दक्षिण श्वेतद्वीप नामक एक महातीर्थ है; मैं वहां ज्ञानकेशव नामसे अवस्थानकर मानवको ज्ञान दान करता हूं। इन ज्ञानकेशवके निकटवर्त्ती श्वेतद्वीपतीर्थमें स्नानकर ज्ञानकेशवकी अर्चना करनेसे, मनुष्यको कभी अज्ञान होना नहीं पड़ता। तार्क्ष्यकेशव नामसे मैं विराजमान हूं, जो सब मनुजोत्तम भक्तिके साथ वहां मेरी अर्चना करते हैं, वह सदा गरुड़की तरह मेरे प्रियपात्र होते और उसके पास ही नारदतीर्थमें मैं नारदकेशवनामसे अवस्थान करता हूं। जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नानकर मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं ब्रह्मविद्याका उपदेश देता हूं। मैं प्रह्लादतीर्थमें प्रह्लादकेशव नामसे अवस्थित हूं; भक्तवृन्द महाभक्ति और समृद्धि लाभार्थ वहां मेरी पूजा करें और वहां ही अश्वमेधतीर्थमें मैं आदित्यकेशव नामसे अवस्थानकर क्षणकालमें भक्तगणकी पापराशि विनाश करता हूं। दत्तात्रेयेश्वर नामक महेश्वरके दक्षिण मैं आदिगदाधर नामसे विराजमान हो भक्तगणको संसारमलसे विमुक्त करता हूं। वहीं मैं भार्गव नामक तीर्थमें भृगुकेशव नामसे अवस्थित रह, जितने मनुष्य काशीमें वास करते हैं, उनका सब मनोभीष्ट सफल करता हूं। अभीष्ट और मङ्गलप्रद वामन नामक महातीर्थमें मैं, वामनकेशव नाम धारणकर अवस्थित हूं; जो मनुष्य अपने कुशलकी कामना करते हों, वह यहां मेरी अर्चना करें। मैं नरनारायणरूप धारणकर सदा नरनारायणतीर्थमें विराजमान हूं, जो सब भक्त वहां मेरी अर्चना करते हैं वह नरनारायणका स्वरूप पाते हैं। मैं यज्ञवराहतीर्थमें यज्ञवराह नाम धारणकर विराजमान हूं; जो व्यक्ति समुदय यज्ञफलके अभिलाषी हों; वह इस स्थानमें मेरी अर्चना करें विदारनरसिंह नामक प्रसिद्ध नामसे अधिष्ठित रह मैं काशीधामके समस्त विघ्न विदूरित करता हूं। तीर्थोपद्रव नाशार्थ वहां मेरी पूजा करना मानवका कर्त्तव्य है। मैं गोपीगोविन्दनाम धारणकर गोपीगोविन्दतीर्थमें अवस्थान करता हूं; जो मनुष्य भक्तिपूर्णहृदयसे वहां मेरी अर्चना करते हैं, वह फिर मेरी मायामें जड़ीभूत नहीं होते। मुनिवर!

निर्म्मल लक्ष्मीनृसिंहतीर्थमें मैं लक्ष्मीनृसिंह नामसे अधिष्ठानकर सदा भक्तिभाजन मनुष्योंको मोक्षलक्ष्मी वितरण करता हूं। मैं शेषमाधव नाम धारणकर पापविनाशन शेष नामक तीर्थमें अधिष्ठित रह भक्तवृन्दका अशेषविध मनोभिलाष सफल करता हूं। शङ्खमाधव नामक तीर्थमें स्नानके उपरान्त शङ्खमाधव नामसे अधिष्ठित मुझे शङ्खतोय द्वारा स्नान करानेसे मानवगण शङ्खनिधिके अधीश्वर हो सकते हैं। मैं हयग्रीवतीर्थमें हयग्रीव नामसे अवस्थित हूं; वहां जो व्यक्ति मुझे भक्तिभावसे प्रणाम करते हैं, वह निश्चय ही विष्णुका परमपद पाते हैं। मैं वृद्धकालेश्वर नामक महादेवके पश्चिम भीष्मकेशव नाम धारणकर अवस्थान करता हूं; जो भक्त भक्तिके साथ वहां मेरी शुश्रुषा करते हैं, मैं उन्हें भीषण उपद्रवसे मुक्त करता हूं। लोलार्कके उत्तर मैं निर्व्वाणकेशव नामसे अवस्थित रह भक्तवृन्दको निर्व्वाणकी सूचना देता हूं और उनके हृदयकी लोलता अपनोदित करता हूं। जो मनुष्य काशीधाममें परमपूज्या देवी त्रिपुरसुन्दरीके दक्षिण त्रिभुवनकेशव नामसे प्रसिद्ध मेरी पूजा करेंगे, उन्हें फिर गर्भयन्त्रणा भोगना न पड़ेगी। मैं ज्ञानवापीके सामने ज्ञानमाधव नामसे अवस्थित हूं, वहां भक्तिभावसे मेरी अर्चना करनेसे नित्यज्ञान लाभ होता है। देवी विशालाक्षीके पास मैं श्वेतमाधव नाम धारणकर विराजमान हूं; वहां जो मनुष्य भक्तिके साथ मेरी अर्चना करते हैं, उन्हें मैं श्वेतद्वीपका आधिपत्य प्रदान करता हूं। यथाविधि प्रयागक्षेत्रमें स्नानकर जो मनुष्य, दशाश्वमेधके उत्तर प्रयागमाधव नामसे विख्यात मेरा दर्शन कर सकें, वह सब पापोंसे निष्कृति पानेमें समर्थ होते हैं। माघ मासमें प्रयागमें जाकर मनुष्य जो पुण्य पाते हैं, उक्त काशीधाममें मेरे पुरोवर्त्ती प्रयागक्षेत्रमें स्नान करनेसे उनलोगोंका उससे दशगुण अधिक पुण्यसञ्चय होता है। मनुष्य गङ्गायमुनासङ्गममें स्नानके लिये जो पुण्य पाते हैं। बाराणसीमें मेरे निकटस्थ प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुण अतिरिक्त पुण्यभागी होते हैं। सूर्य्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें प्रभूत दानकर मनुष्य जो फल पा सकते हैं, काशीधामके इस स्थानमें उसका दशगुण अधिक मिलता है। जहां यमुना पूर्व्ववाहिणी और भागीरथी उत्तरवाहिणी हैं, उस सङ्गमस्थानको प्राप्त करनेसे मनुष्यका ब्रह्महत्याजनित पातक भी विदूरित होता है। जो मनुष्य महापुण्यके अभिलाषी होते हैं, वह काशीस्थ प्रयागतीर्थमें केशमुण्डन करा भक्तिभावसे पिण्डदान और प्रभूत दान करें। जितने गुण प्रजापतिक्षेत्रमें विराजमान हैं, महातीर्थ काशीधाममें उन सब गुणोंका असंख्यरूप समझना। प्रयागतीर्थमें भक्तवृन्दको अभीष्ट-

प्रद प्रयागेश्वर नामक महालिङ्गके सान्निध्य-हेतु वह तीर्थ कामप्रद कहा जाता है। सूर्य्यदेवके मकरराशिमें आनेपर माघमासमें काशीधाममें अरुणोदयके समय जो मनुष्य प्रयाग तीर्थमें स्नान नहीं करते, तो उनके मुक्ति पानेकी आशा कहां ? जो संयमपूर्व्वक माघमासमें काशीस्थ प्रयागमें स्नान कर सकें, तो निःसन्देह उन्हें दश अश्वमेध यज्ञका फल मिले। जो मनुष्य माघमासमें प्रयागमें स्नानकर प्रतिदिन भक्तिके साथ प्रयागमाधव और अभीष्टप्रद प्रयागेश्वर नामक महालिङ्गकी अर्च्चना करते हैं, वह इस भूमण्डलमें धनधान्य और पुत्रादि लाभ करते हुए मनोहर विषयोपभोगसे परम आनन्द पा अन्तमें मोक्षपदके अधिकारी होते हैं। पूर्व्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और ऊर्द्ध अधोदिशमें जो समस्त तीर्थ विराजमान हैं, माघमासमें प्रयागतीर्थमें उन सब तीर्थोंका समागम होता है। मुनिवर! किन्तु वाराणसीस्थित सब तीर्थ कभी प्रस्थान नहीं करते। और यदि गमन भी करें, तो उसी मुहूर्त्तमें ही फिर लौट आते हैं। कार्त्तिकमासमें उत्तमतम तीन तीर्थ नित्य प्रभातसमय मेरे पास महापातकविध्वंसी महामङ्गलप्रद पञ्चनदतीर्थमें उपस्थित होते हैं और सब तीर्थ मध्याह्नके समय प्रतिदिन स्नानार्थ मुक्तिप्रदायिनी मणिकर्णिकामें जाते हैं। हे मुनिवर! तीर्थत्रयकी सर्व्वोत्कृष्टता और समयविशेषमें उन लोगोंका प्राधान्यरूप वाराणसीका गूढ़ विषय तुमसे कहा, इस समय एक दूसरा गूढ़ विषय प्रकाश करता हूं, जो यहां वहां प्रकाश करना अवैध है। विशेष, भक्तिहीनसे उसे सदा छिपाना और भक्तिभाजनके सामने प्रकाश करना। काशीधामके सब तीर्थ ही अपने अपने प्रभावसे अपनी अपनी प्राधान्य रक्षा करते हुए महापापराशि दूर करते हैं; तथापि काशीधाममें यही गूढ़ रहस्य है, कि एक मणिकर्णिका ही सर्व्वापेक्षा उत्कृष्ट है। केवलमात्र मणिकर्णिकाके प्रभावसे ही समुदय तीर्थ, पापनाशार्थ गर्ज्जन करनेमें समर्थ हैं। वाराणसीमें जितने तीर्थ हैं, सभी पापात्माओंका प्रभूत घोरपातक विनष्ट करते हुए प्रायश्चित्तार्थ पर्व्व या अपर्व्वके दिन मध्याह्नके समय मणिकर्णिकामें जाते हैं और प्रतिदिन यथानियमसे मणिकर्णिकामें स्नानकर निर्म्मलत्व पाते हैं। अधिक क्या, नित्य मध्याह्नकालमें भगवान् विश्वेश्वर भी भवानीके साथ मणिकर्णिकामें स्नान करते हैं। मुनिवर! प्रतिदिन मध्याह्नमें मैं भी कमलाके साथ वैकुण्ठधामसे आकर आनन्द उसमें स्नान करता हूं। जो व्यक्तिमात्र एकबार मेरा नाम लेते हैं। मैंने जो उनकी पापराशि ध्वंस करते हुए "हरि" नाम धारण किया है, वह केवल मणिकर्णिका हीके प्रभावसे। भगवान् पितामह भी नित्य मध्याह्न कर्त्तव्य निर्व्वाहार्थ हंस-